Fortnightly per copy Rs. 12/- only

18th August 2017

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హింది-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Date of Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री विट्ठल राव आर्य की अमेरिका यात्रा के दौरान की झलकियाँ

दि. 12-8-2017 शनिवार के सायंकाल मधुकर जी अपने सभी मित्रों को परिवार सहित आमंत्रित कर यज्ञ का आयोजन किया। सत्संग में लगभग 50 लोगों की उपस्थिति रही। शास्त्री जी ने हवन संपन्न करवाया तथा संदेश भी दिया। मंत्री सभा ने अंग्रेजी में यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप पर व्याख्यान दिया। पढ़े लिखे लोगों ने इसे बहुत सराहा। यज्ञ न केवल धार्मिक कृत्य है बल्कि इसको सही विधान से करने पर नॉन बैक्टिरिअल गैस को उत्पन करती जिससे अपने चारों तरफ रोग निरोधक वातावरण बना रहता है। हवन से कम मात्रा में CO_2 पैदा हो इसका ध्यान रखने के लिए कहा गया। कम मात्रा की कार्बन डाई ऑक्साइड चारों तरफ पेड़ पौथें हो तो वे CO_2 को अपना आहार बना वापस ऑक्सिजन देती है। इससे अपने चारों तरफ व जितनी वायु फ़ैलती उतनी वायु शुद्ध बनी रहती है।

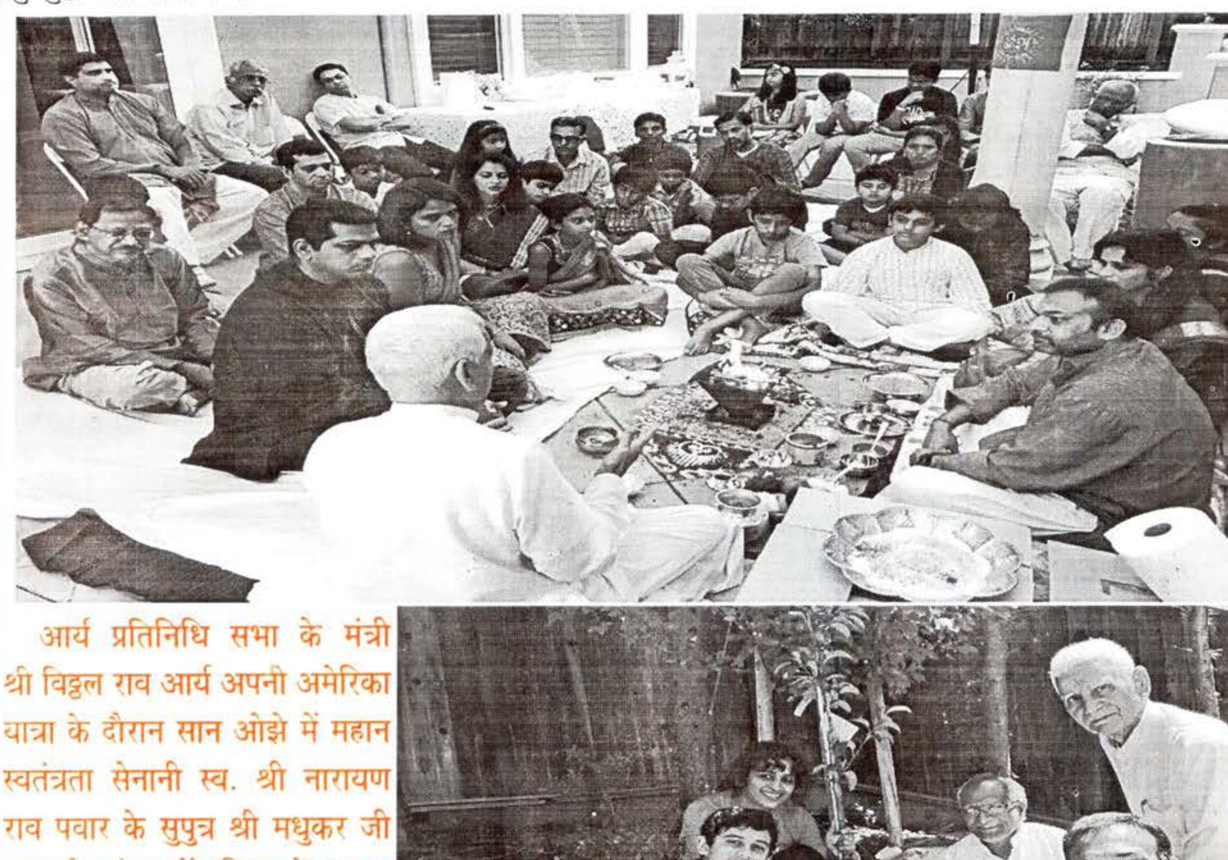

आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री विट्ठल राव आर्य अपनी अमेरिका यात्रा के दौरान सान ओझे में महान स्वतंत्रता सेनानी स्व. श्री नारायण राव पवार के सुपुत्र श्री मधुकर जी पवार के प्रांगण में परिवार के सदस्य श्रीमती मृदुलाजी, बेटी साहिती, बेटा आदित्य के साथ पौधा लगाते हुए साथ मे पंडित धर्मपाल शास्त्री जी।

Dateof Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month
आर्य जीवन 18-08-2017 Registered-Reg. No. HD/783/2015-17 RNI No. 52990/93

To,

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor: Vithal Rao Arya, M.Sc. LL.B., Sahityaratna
Arya Prathinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-95.
Phone No. 040-24753827, 66758707, Fax : 040-24557946
Annual subscription Rs. 250/- సంపాదకులు - విఠల్ రావు ఆర్య, మంత్రి సభ

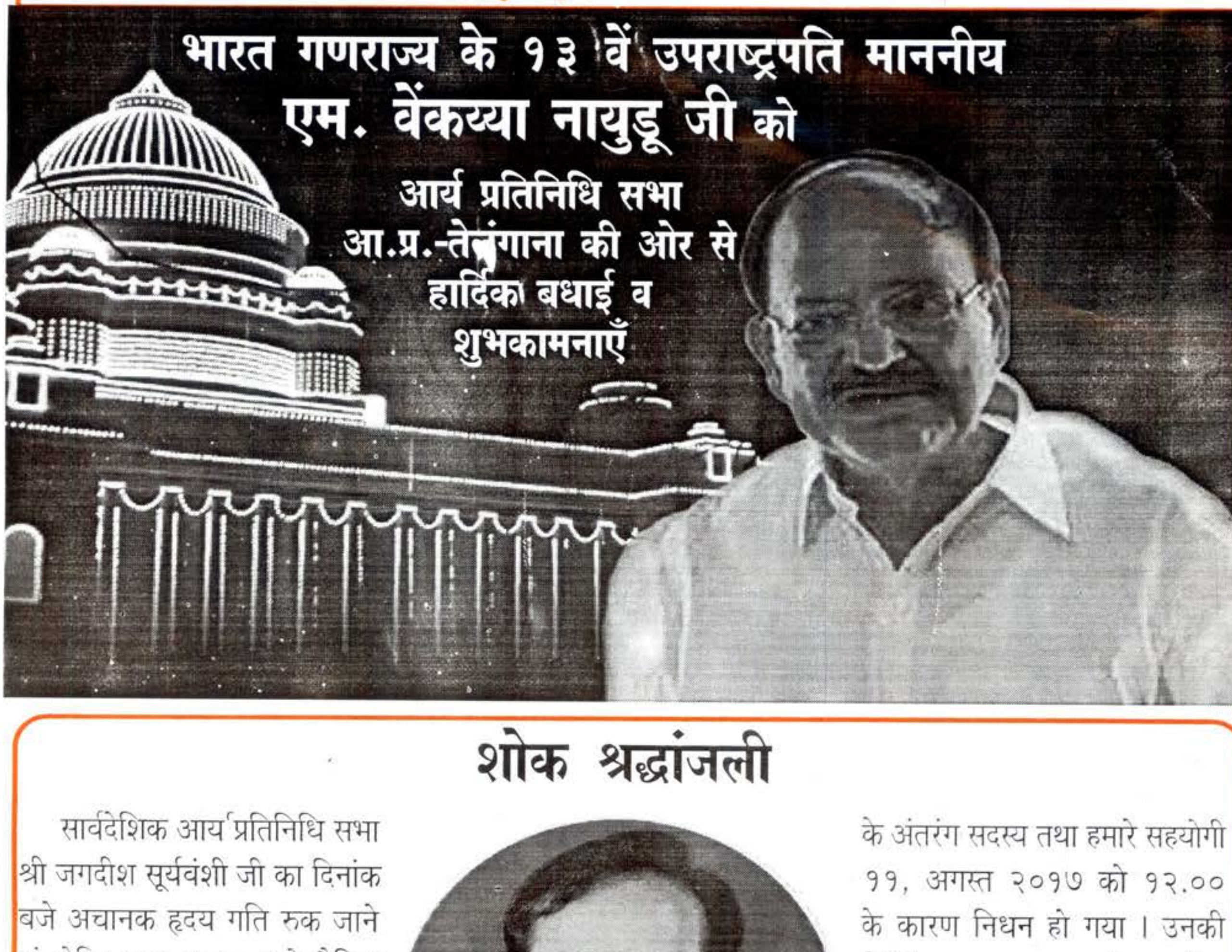

शोक श्रद्धांजली

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अंतरंग सदस्य तथा हमारे सहयोगी श्री जगदीश सूर्यवंशी जी का दिनांक ११, अगस्त २०१७ को १२.०० बजे अचानक हृदय गति रुक जाने के कारण निधन हो गया। उनकी अंतयेष्टि शाम ७.०० बजे वैदिक रीते के अनुसार सम्पन्न हुई। जगदीश जी सुर्यवंशी का निधन हम सभी आर्य जनों के लिए एक आघात है, जिसकी पूर्ति होना असम्भव हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना की ओर से उनको भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान कर परिवार जनों को इस दारुण दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR
Editor : Vithal Rao Arya ● Email : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691

సంపాదకులు: శ్రీ విఠల్‌రావు ఆర్య, మంత్రి సభ ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్‌బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph: 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विट्ठलराव आर्य, मंत्री सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रेस, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया।
प्रकाशक: आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-95.

वैदिक विचार धारा ही सर्वश्रेष्ठ

-डॉ. सुशील वर्मा

आर्य समाज का नियम है "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना सुनाना अब आर्यों का परमधर्म है। परन्तु हम में से कितने हैं जो वेद पढ़नें के लिए समय निकालते हैं जब कि हमारे लिए ये धर्म ही नहीं, परमधर्म है। इसी प्रकार तैन्तिरीय उपनिषद की शिक्षा बल्ली में दीक्षान्त समारोह के समय उपदेश एवं आदेश दिया जाता है सत्यं वद। धर्म चर।

स्वाध्यायांन्माप्रमदः (तै.उ.११/१ शिक्षा व.)

परन्तु सत्य एवं धर्म की राह बहुत कठिन है। मनुष्य मात्र की कमजोरी है कि वह आसान राह ढूँढता है इसीलिए झूठ एवं दुर्व्यसनों की तरह जल्दी आकर्षित हो जाता है क्योंकि ये रास्ते बड़े सरल होते हैं।

यह एक अटल सत्य है कि वेद का मार्ग ही सुखदायक है परन्तु फिर भी हम वेद मार्ग पर चलने को तैयार नहीं होते। आज वैदिक धर्म को छोडकर जितने भी धर्म, सम्प्रदाय चल रहे है सभी मनुष्य को प्रलोभन देते है इष्ट पूर्ति का कामनाएँ पूर्ण करने का, धन प्राप्ति का सांसारिक भोगों की पूर्ति का। इसी की आड़ में अन्ध-विश्वास, पाखण्ड, कुरीतियाँ बढ़ती जा रही है। सभी धर्म, सम्प्रदायों ने वेदों में से कुछ अच्छे विचार लिए (शायद एक या दो, मात्र आवरण के लिए) बाकी सब अपनी सुविधानुसार स्वनिर्मित तथ्य प्रतिपादित कर दिए। अपनी-अपनी दुकानदारियाँ प्रचलित कर दीं।

वैदिक धर्म को अपनाने का एक ही कारण है कि वेद कोई प्रलोभन नहीं देता, कर्मफल पर विश्वास सिखाता है। कर्मानुसार ही फल की प्राप्ति इहलोक पर विश्वास सिखाता है। कर्मानुसार ही फल की प्राप्ति इहलोक एवं परलोक में है। महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है।

"अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाराभम्"-महाभारत यह श्लोक यहाँ इसलिए उद्धरित किया गया (गीता) है क्योंकि हमारे पौराणिक भाई गीता का महत्त्व तो बहुत देते हैं परन्तु इस आदेश को परे धकेल कर कहेंगे कि अमूक नदी में स्नान कर आओ, पाप धुल जाएँगे। अमूक व्रत कर लो, अमूक देवता का प्रसाद चढ़ा दो, अमूक मन्नत माँग लो, सब कार्य सिद्ध हो जाएगें। फिर कहाँ गया गीता का उपदेश। यही कुछ ईसाई कहते हैं कि प्रायश्चित कर लो, गुनाह स्वीकार कर लो, सब माफ हो जाएगा। यही मुसलमान कहते है कि अमूक पीर की दरगाह/ कब्र पर चादर चढ़ा आओ, कलमें पढ़ लो, अल्लाह माफ कर देगा।

बस यही कारण है कि लोग वैदिक धर्म को अपनाना नहीं चाहते। उनका तर्क यही होता है कि यदि हमारे गुनाह माफ ही नहीं होते, बुरे कर्म का फल बुरा ही मिलना है तो फिर परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना किस लिए ? हमारे आर्य समाजों में संख्या कम होने का मुख्य कारण यही है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी है। जैसे

१) आर्य समाज में हवन में बैठने के लिए कम से कम आधा घँटा समय तो चाहिए। क्या आवश्यकता है इतना समय व्यतीत करने की, जबकि मन्दिर मस्जिद में गए, हाथ जोड़े, कुछ शब्द प्रार्थना के कहे और काम समाप्त।

२) मन्त्र संस्कृत में बोले जाते है। हमें तो संस्कृत आती नहीं, फिर हवन में बैठने का क्या फायदा ?

३) हमारे उपदेश यही होते है कि कर्मानुसार फल मिलना है तो फिर आपसे तो दूसरे अच्छे, जो आश्वासन दिलाते हैं कि हमारे सभी इच्छाएँ कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी।

४) हमारे प्रवचन कुछ कठिन एवं नीरस होते हैं। वहाँ तो प्रवचन की आवश्यकता ही नहीं। भक्ति रस के नाम पर श्रृंगार रस परोसा जाता है। तर्क की आवश्यकता ही नहीं।

परन्तु ऐसा भी नहीं कि हम वैदिक धर्म को छोड़ दें। हमारा तो परम कर्त्तव्य है कि हम वैदिक मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बनाएँ।

"कृण्वन्तोविश्मार्यम" सबको श्रेष्ठ बनाने और स्वयं बनने का हमारा लक्ष्य है। इसके लिए हमें प्रयास करना चाहिए।

१) वैदिक परम्पराओं का निर्वाह करने के लिए हम सबके पहले हवन करते हैं। नए आगन्तुकों के लिए हम यज्ञ-हवन को रोचक बनाएँ। इसके लिए हवन करते समय बीच बीच मे कुछ क्रियाओं तथा मन्त्रों का सरल अर्थ एवं व्याख्या (रोचक ढंग से) करते रहना चाहिए ताकि लोग यज्ञ के सम्पर्क में रहे, अन्यथा मन्त्र तो उनके लिए नीरस हो जाएँगे क्योंकि नए व्यक्ति के लिए इनका कोई लेना देना नहीं। यदि कहीं एक मन्त्र भी समझ आ जाए तो आगे के लिए उसकी दिलचस्पी बढ़ जाएगी।

वैसे तो सभी मन्त्रों के अर्थ पुस्तकों में दिए होते है परन्तु उन्हें कौन पढ़ता है ? चाहिए तो यह कि छोटी-छोटी बातें जो सारगर्भित हो, वेदानुकूल ही करते रहना चाहिए ताकि वे उस यज्ञ प्रक्रिया से जुड़े रहें।

२) हर सप्ताह साप्ताहिक सत्संग के लिए एक नया यजमान नियुक्त किया जाना चाहिए जो कि हमारे सदस्यों में से न होकर अन्य हो ताकि हम प्रचार कर सकें। यजमान को प्रेरणा दें कि आप अपने साथ उपने सम्बन्धी, मित्रगण लेकर आएँ ताकि उनमें से यदि सभी नहीं तो कुछ एक में तो यज्ञ के प्रति श्रद्धा जागृत होगी।

३) हमें कटाक्ष की अपेक्षा सरल एवं रोचक रूप में अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करना चाहिए। अलोचना भी आवश्यक है परन्तु इस ढंग से ताकि वे इसे अपने हित के लिए समझे न कि द्वेष।

४) वैसे तो लोग हमारे मन्त्रों के उच्चारण को बहुत सरहाते हैं। यह विड़म्बना ही कहिए कि हम तो वेद को प्राथमिकता देते हैं परन्तु पौराणिक भाईयों में "प्रस्थान त्रयी" का प्रचारहै

क्रमशः पृ.९ पर

आर्य प्रतिनिधि सभा, आ.प्र.-तेलंगाना के तत्वावधान तथा आर्य समाज, बलकमपेट के सौजन्य से वैदिक आश्रम कन्या गुरुकुल, बेगमपेट में श्रावणी उपाकर्म पर्व एवं हैदराबाद आर्य सत्याग्रह बलिदान दिवस सम्पन्न

बेगमपेट स्थित वैदिक आश्रम कन्या गुरुकुल में डॉ. वसुधा अरविंद शास्त्री के पौरोहित्य में ब्रह्म यज्ञ संपन्न हुआ । यज्ञोपरान्त पंडित प्रियदत्त शास्त्री का भजनोपदेश हुआ । अवसर पर बटुक विकास केंद्र, शामीरपेट के संस्थापक आचार्य भवभूति ने वैदिक शिक्षा, संस्कार, अंधविश्वास, पाखंड और शिक्षा-दीक्षा संबंधित विषयों पर उदाहरण के साथ व्याख्यान दिया । उन्होंने भ्रष्टाचार, आतंकवाद सहित अन्य बुराइयों पर भी अपने व्याखान में प्रहार किया । आचार्या नीरजा ने वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए, जन्मना जाति व्यवस्था को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनुचित बताया । साथ ही स्वामी दयानंद द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश में कर्म और आचरण के अनुसार जाति व्यवस्था की मान्यता पर बल दिया ।

आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ठाकुर लक्ष्मण सिंह ने अध्यक्षीय संबोधन में आर्य सत्याग्रह, श्रावणी पर्व एवं रक्षाबंधन के महत्व को रेखांकित किया । रक्षाबंधन पर्व का महत्व समझाते हुए लक्ष्मण सिंह ने कहा कि सिकंदर महान की मंगेतर रेक्सोना (रुखसाना) ने राजा पोरस को राखी बांधी, इसके उत्तर में पोरस ने रुखसाना को वचन दिया कि वह युद्ध में अपने हाथों से सिकंदर को नहीं मारेगा । वचन निभाते हुए उसने युद्ध में सिकंदर के अपने हाथ में आने के बावजूद प्राण दान दिया । इसका एहसान मानकर सिकंदर ने बाद में पोरस से मित्रता कर ली । सभा के वरिष्ठ उप-मंत्री आर. रामचंद्र कुमार ने बलिदान सत्याग्रहियों के श्रद्धांजलि गीत का सामूहिक पाठ उपस्थित जनों से करवाया । उप-प्रधान हरिकिशन वेदालंकार ने कार्यक्रम का संचालन किया । आचार्य वेदालोक एवं बलकमपेट आर्य समाज तथा सभा के पदाधिकारीगण अशोक कुमार श्रीवास्तव कोषाध्यक्ष, बसी रेड्डी पुस्तकाध्यक्ष, मल्लीकार्जुन जी व सुधाकर पवार अंतरंग सदस्य तथा कार्यालय प्रबंधक श्रीनिवास कमितकर ने विशेष सहयोग दिया तथा सभा के पदाधिकारिगण एवं नगर द्वय के आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं ने कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग दिया । सभा इन सभी का आभार प्रकट करती है । शांतिपाठ व जयघोष के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ ।

कुछ हैं, बड़े दयालु हैं, मन को नम्र, सरल बनाकर उसका स्मरण भजन, कीर्तन करो। भोजन वस्त्र सांसारिक सुख अपने आप मिल जायेगा। जिसके हो जाओगे उसी को चिन्ता होगी। अपने को क्यों परवाह ? एक ही परवाह रखो सबसे बेपरवाह हो जाओगे। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है-

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युं पासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अर्थ- जो जन अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं, ऐसे निरन्तर उपासना करने वालों के योग (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा अथवा कुशलता) का मैं जिम्मेदार हूँ।

निसन्देह इसमें हृदय बहुत कोमल हो जाता है। परन्तु ज्ञान मन्द पड़ सकता है और कर्म शिथिल हो जाता है। हां भक्त बनकर और दूसरे भक्तों में मिलकर शान्ति अवश्य आ जाती है पर संसार के संघर्ष का मुकाबला करने की प्रवृत्ति व शक्ति मन्द पड़ जाती है। उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उत्साह नहीं रहता है। हां, आनन्द मिलता है और शान्ति आ जाती है। कुछ दिन निद्रा बड़े आनन्द की आती है। भावी की भगवान् जाने।

जब अन्य देशवासी देश अथवा जाति पर आक्रमण करके उसे दास बनाना चाहते हैं और उनका अपमान करना चाहें तो जरा मस्ती की निद्रा का पता लगता है कैसे भंग होती है। भारत का साधु सम्प्रदाय इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

भक्ति का वास्तविक फल, कर्म के लिए ज्ञान और किया हुा कर्म भगवदर्पण है

पुत्र- पिता जी ! मैंने जान-बूझकर वह प्रश्न छेड़ा है कि पिता जी अपना मत प्रकट करेंगे। आपका भक्तिमार्ग पुरुषार्थ और विकास का पोषक है, उस एकांशी भक्ति वाला नहीं। आप उस मार्ग को श्रेय कहते हैं परन्तु उसके इच्छुक नहीं। अब कृपा करके उसी मन्त्र को चलाइये।

मानव महत्त्व दर्शाने वाली इन्द्रियाँ-

पिता- पुत्र ! जितनी भी योनियाँ अथवा जीवधारी हैं उनके आँख, कान, मुख, इन्द्रियाँ आदि अपने लिए देखते हैं, अपने लिए सुनते, अपने लिए चलते, खाते-पीते और विषय भोग भोगते हैं। उनकी आँख किसी के दुःख दर्द को नहीं देख सकती, न उनके कान दूसरे के आर्त्तनाद को सुन सकते हैं। मनुष्य के आँख और कान अपने तो थे ही, परन्तु प्रभु ने उनको दूसरे के दुःख देखने और सुनने का गुण भी दिया। दो अल्पवयस्क सहोदर भाई हो, कोई अत्याचारी एक बालक को पीटने लगे तो दूसरा बालक सहन नहीं कर सकता और कुछ नहीं कर सकेगा तो रो पड़ेगा। गो अपने वत्स को अथवा वत्स अपनी माता पर मार पड़ती देख कभी अनुभव ही नहीं कर सकता तो मनुष्य को जितनी इन्द्रियाँ प्रभु ने दी हैं वे अपना भोग तो पशु की न्याई स्वाभाविक भोगती ही हैं परन्तु अन्तः करण जगे होने के कारण सभी इन्द्रियाँ समष्टि काम करने के लिए बनाई गई हैं। मनुष्य के समस्त शरीर की सकल इन्द्रियाँ अपने-अपने स्थल पर बहुमूल्यवान् हैं परन्तु मनुष्य का जीवन, मनुष्य का मनुष्यत्व, मनुष्य की महानता और बड़ाई विशेषता 'केवल तीन इन्द्रियों' से है जिसके लिए वेद भगवान् ने कहा है-

महिमा ते अन्येन न सन्नशे।

अर्थात् प्यारे पुत्र ! तेरी महानता जो प्रभु ने बताई है वह तीन चीजों से है, उनको किसी भी मूल्य पर लोभ मोहवश नष्ट न कर। यदि तूने इस महानता की रक्षा न की तेरा मूल्य फूटी कौड़ी नहीं रहेगा।

पुत्र-पिता जी ! मेरी है तो मूर्खता कि इतने मनोरंजक और लाभदायक विषय को सुनते हुए भी मेरा मन अन्यत्र चला गया और वह कुछ विचार और शंका में पड़ गया। मैं चाहता हूँ यदि आप पितृ-वात्सल्य से मेरा यह अपराध क्षमा करें तो मैं वह शंका पहले निवारण करा लूँ। मन बड़ा चंचल है और यह जो थोड़ा बहुत पढ़ा और तर्क-वितर्क शक्ति रखने का हम में अभिमान है, यही हम को खराब करता है और कोई समझा रहा होता तो स्यात् या तो यह साहस न पड़ता अथवा साहस पड़ता, कहता तो वह रूष्ट हो जाता। आप पिता हैं। पुत्र के लिए सब परिश्रम कर रहे हैं और दूसरा भी कोई नहीं इसलिए सत्य कह रहा हूँ।

पिता- साधु पुत्र ! साधु। कोई बात नहीं जिससे तुम्हारा हित अधिक हो वही मुझे तुम्हारे लिए स्वीकार है, कहो।

पुत्र- भक्त लोग जो भक्ति में इतना आनन्द रस और शान्ति पाते हैं। अहर्निश मग्ध और प्रसन्न बदन रहते हैं, यही तो आनन्द प्राप्ति मनुष्य का वास्तविक ध्येय है, जब उनको यह प्राप्त है तो इसका अर्थ हुआ कि प्रभु हर समय उनके सामने रहता है फिर चाहिए। दूसरे देश का आक्रमण तो कभी होगा। जीवन भर ही नहीं हो यह भी सम्भव है तो फिर केवल भक्ति ऊँची हुई।

पिता- तुम वेद पाठ प्रतिदिन करते हो। पढ़ा नहीं।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते।
ततो भूयइव ते तभो यउ विद्यायाश्रताः॥

अर्थात् वे लोग घोर अन्धकार को जाते हैं जो केवल अविद्या में रहते हैं और उससे भी अधिक अन्धकार को वे जाते हैं जो केवल ज्ञान में रत रहते हैं।

पुत्र- वेद ने तो केवल ज्ञान, केवल कर्म करने वाले के लिए कहा है भक्ति के लिए तो नहीं कहा।

कर्म दो प्रकार के हैं -

पिता- प्यारे भक्ति भी तो कर्म ही है। कर्म दो प्रकार का होता है एक बाह्य कर्म दूसरा आन्तरिक कर्म।

१) बाह्य कर्म से कभी मनुष्य मृत्यु से नहीं तर सकता। बाह्य कर्म का फल तो दुःख-निवृत्ति है और बाह्य ज्ञान का फल सुख। वह भी जब दोनों मिले हुए हों। ज्ञानशून्य कर्म तो मनुष्य को घने अन्धकार में डालने वाला है। बाह्य कर्म भी बिना ज्ञान के

अन्तःकरण के दोष

-स्वामी महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

पिता- हां पुत्र ! तीन प्रकार का मल दोष अन्तः करण का समझा जाता है- १) मल, २) विक्षेप, ३) आवरण ।

आत्मा पर अज्ञान का आवरण है, मन पर विक्षेप चंचलता का दोष है और शरीर पाप-वासनाओं के मल से भरा हुआ है । इन तीनों दोषों के नाश करने के लिए यह मानव शरीर मिलता है । सर्वप्रथम मल को दूर करना आवश्यक है तो पापमय जीवन से बार-बार जन्म में नीच योनियों में गति करता है । मन की चंचलता तो उपासना से दूर होती है और अज्ञान का आवरण दूर होने से आत्मज्ञान प्राप्त होता है ।

पुत्र- तब तो बड़ा कठिन है आत्मज्ञान होना, अहंभाव बुद्धि से मिटाना । परन्तु मैं तो इससे भी कठिन मन की चंचलता को समझता हूँ । अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से यही कहा था-

चंचल हि मनः पार्थ प्रमाथि बलवद् दृढम् ।

इतना बलवान् मन है कि वह न इच्छा करने पर भी घसीट ले जाता है पाप में । कैसे किया जाये ?

पिता- पुत्र ! सबसे प्रथम मल रहित होना पाप दुष्कर्मों से बचना आवश्यक है । पापवासना कर्म मनुष्य को आवागमन में फिराता है और शुभ कर्म वासनाएं शुभ कर्मों में प्रेरित कर अन्ततः जन्म से छुड़ा देती हैं । ऐसे समझो कि ग्रीष्म ऋतु है और नद चढ़ा हुआ है । नदी का जल बड़े वेग से बहता है और ऐसा मटियाला गंदला है कि चुल्लूभर जल लेने से सारी मिट्टी ही मिट्टी आती है, पीने को मन नहीं करता और इतना तीव्र प्रवाह है कि जो भी सामने आये पदार्थ हो चाहे ग्राम, वृक्ष हो अथवा मनुष्य, पशु, सबको डुबो देता है । परन्तु जब शीतकाल आता है तो उसी जल में मिट्टी नीचे बैठ जाती है । प्रवाह मन्द पड़ जाता है । वह जो चाहे प्रवाह में चल रहा हो (चंचल मन की न्याई) तब भी वह जल स्वच्छ निर्मल पीने योग्य और उसमें मनुष्य अपने रूप को चाहे स्पष्ट नहीं परन्तु बौना रूप में देख सकता है । ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य पाप कर्मों से बचकर शुभ कर्मों में लग जाता है तो पिछले पाप कर्मों की वासना रूपी मिट्टी नीचे दबकर बैठ जाती है और शुभ कर्मों का जल बहता हुआ, स्वच्छ सबके लिए लाभकारी और अपने स्वरूप का भी धीरे-धीरे भान कराने लग ाता है । अन्त में वह चंचल मन भी शुभ कर्मों के प्राबल्य से उपासना द्वारा स्थिर हो जाता है और स्थिर मन, स्थिर बुद्धि में जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही आत्मदर्शन कराता है ।

कर्म की प्रधानता-

अतः शास्त्रकारों ने कर्म को प्रधान माना है और यही मैं कह रहा था कि ज्ञान से मनुष्य संसार का प्यारा नहीं बन सकता और न ही उपासना से बन सकता है । केवल कर्म से ही सर्वप्रिय बन सकता है । कर्म संसार से सम्बन्ध बनाने के लिए है । उपासना परमात्मा से प्रीति करने के लिए और ज्ञान अपनी आत्मा के लिए है । इस मन्त्र का आशय संसार के व्यक्तियों से ब्राह्मण, देवता, राजा क्षत्रिय, वैश्यों, शूद्रों से प्रीति और प्रिय बनने के लिए था ।

देव आदि कौन हैं ?

इस मन्त्र के गूढ़ रहस्य को समझो । संसार भर की मानव जाति में इतने ही वर्ग हैं । अपने परिवार से लेकर समाज, जाति, देश और संसार में 'देव' वही हैं जो मान्य पुरखा अन्न, धन, ज्ञान अथवा बल, सुख अथवा अधिकार देने वाले हैं और 'राजा' वहीं हैं जो अन्न, धन, ज्ञान, सुख अधिकार तथा प्रजा की रक्षा करने वाले हैं और 'वैश्य' वहीं हैं जो अपना धर्म सामर्थ्य इन उपर्युक्त के अधिक बढ़ाने में सहायता करते हैं और 'शूद्र' वही है जो सबको अपने कार्य व्यवहार में व्यस्त रहने के लिए उनके तन की सेवा करते, तन की सेवा की चिन्ता से उन्हें मुक्त रखते हैं ।

कोई भी मनुष्य प्राणी इस मन्त्र से बाहर नहीं बचा रहता । इसी मन्त्र का आचरण विश्व में शान्ति लाने वाला है ।

फकीर साधु सम्प्रदाय (हानि अधिक, लाभ कम)-

पुत्र- क्षमा कीजियेगा । एक बात मेरे दिल में उपजी है । जितनी सहज शान्ति साधु सन्तों और भक्तों में देखी जाती है, वे प्रभु भजन में मस्त रहकर शान्त होते हैं ऐसी शान्ति सहज ही में अन्य किसी को मिलनी कठिन है ।

पिता- बात तो तुम्हें ठीक सूझी है । हो सकता है, स्यात् मन में यह विचार आया हो कि पिता साधु (फकीर) बन गये हैं, आनन्द में हैं । न किसी को लेन न देन, न कलह झंझट, स्वतन्त्र कुटिया बना रहते हैं परन्तु वह भी सुन लो । मेरी अवस्था तुम्हारी समझ वाले फकीर सन्तों की नहीं । मेरा मार्ग वैदिक मार्ग है परन्तु उनका जिनको देखकर तुम्हें विचार उत्पन्न हुआ है, वह फकीरी भी कोई सुगम वस्तु नहीं । किसी ने कहा है-

फकीरा ! फकीरी दूर है, जैसे लम्बी खजूर ।
जो पीवे तां अमृत रस, जे गिरें ते चकनाचूर ॥

और फकीरी के लिए कहा है-

फिकिर सभी को खाय, फिकिर सभी का पीर ।
फिकिर की फांकी जो करे, उसका नाम फकीर ॥

उदर समान अन्न ले, तन समाता चीर ।
अधिक संग्रह न करे, तिस का नाम फकीर ॥

भक्तों का मार्ग मध्य का मार्ग है । भक्तों की दृष्टि यह बन जाती है कि भगवान् सब

गोरक्षा कैसे हो ?

-कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

आधुनिक गोप्रेमियों में महर्षि दयानन्द का नाम सर्वोपरि है । महर्षि ने न केवल अपने हृदय के उद्‌गारों को 'गोकरुणानिधि' नाम की एक पुस्तक के माध्यम से हमारे समक्ष रखा अपितु गोरक्षा के माध्यम से हमारे समक्ष रखा अपितु गोरक्षा को सार्वजनिक आन्दोलन का रूप दिया । परमेश्वर के सिवा कभी भी किसी के आगे नतमस्तक न होने वाले स्वाभिमानी दयानन्द गौमाता की रक्षा हेतु अजमेर के कमिश्नर डेविडसन, राजस्थान के पोलिटिकल एजेंट कर्नल ब्रुक्स और संयुत प्रांत (उ.प्र.) के गवर्नर म्योर के समक्ष हाथ जोड़ने को विवश हुए थे कृषि प्रधान देश होने से गोमाता का भारतीय अर्थव्यवस्था में एक अप्रतिम स्थान रहा है भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानियों- लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, गोखले आदि ने यह घोषणा की थी कि स्वराज्य मिलते ही गोवध तुरन्त बन्द कराया जायगा । उपर्युक्त नेताओं की घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता को आशा थी कि अंग्रेजी शासन चले जाने के साथ ही साथ गोहत्या का कलंक भी इस देश से मिट जायगा । किन्तु यह आशा फलीफूत नहीं हुई । यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जायगा ।

मुगल काल में छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरुगोविन्दसिंह आदि वीरों ने हो हत्या के कलंक के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया । शिवाजी ने बाल्यावस्था में ही एक गोहत्यारे कसाई का वध कर गाय को मुक्त कर अपनी गोभक्ति का परिचय दिया था । गुरु गोविन्दसिंहजी महाराज ने तो सिखपंथ की स्थापना ही गोघात का कलंक मिटाने के उद्देश्य से की । उन्होंने अपनी अराध्य देवी नेनोदेवी से एक वर मांगा था कि गोधात का दुख जगत से मिटाऊँ । गुरु तेगबहादुर, गुरु अजुर्नदेव आदि सिख गुरुओं के बलिदान हिन्दूधर्म तथा गौमाता की रक्षा के लिए हुए थे ।

गोरक्षा आन्दोलन के अग्रणी पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती- गोरक्षा के लिए कार्य करने वालों में सबसे प्रमुख और अग्रिम पंक्ति में महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम लिया जाता है ।

गोरक्षा के लिए महर्षि दयानन्द का आन्दोलन-

उनकी गौमाता के प्रति दया 'गोकरुणानिधि' में ही उजागर होती है । गायों की नृशंस हत्या को देखकर ऋषि दयानन्द के जीवन में कतिपय ऐसे प्रसंग आते हैं जिन अवसरों पर ऋषि दयानन्द के अश्रु बहते हुए देखे गये-

उनके द्वारा गौमता की रक्षा के लिए आन्दोलन का आरम्भ महारानी विक्टोरियो को लिखे एक पत्र से प्रारम्भ किया गया था, जिसका वृतान्त निम्न प्रकार है-

गोमाता के वध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर कराकर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को प्रतिवेदन करते हुए महर्षि ने कहा था- बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या करना महापाप है, इसको बन्द करने से भारत देश फिर समृद्धशाली हो सकता है । गाय हमारे सुखों का स्रोत है, निर्धन का जीवन और धनवान का सौभाग्य है । भारत देश की खुशहाली के लिए यह रीढ़ की हड्डी है ।

महर्षि दयानन्द द्वारा महारानी विक्टोरिया को भेजा प्रतिवेदन निम्न प्रकार है-

"ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है जो सुख के लाभ में प्रसन्न और दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो । जैसे दूसरे के किये अपने उपकार में स्वयम् आनन्दित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये । क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है या होगा, जो परेपकार रूप धर्म और-परहानि स्वरूप अधर्म के सिवाय धर्म और अधर्म की सिद्ध कर सके । धन्य वे महाशयजन हैं जो अपने तन, मन और धन से संसार का उपकार सिद्ध करते हैं । द्वितीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं ।

सृष्टिक्रम में ठीक ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो जो वस्तु बनाया है वह पूर्ण उपकार के लिये है, अल्पलाभ से महाहानि करने के अर्थ नहीं । विश्व में दो ही जीवन के मूल हैं- एक अन्न और दूसरा पान । इसी अभिप्राय से आर्यवर शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे । अब भी इस गाय, बैल, भैंस आदि को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते हैं, क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है । इससे सब का जीवन सुखी हो सकता है । जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इके मारने और मरवाने से होता है, उतना अन्य किसी कर्म से नहीं । इस का निर्णय 'गोकरुणानिधि' पुस्तक में अच्छे प्रकार से प्रकट कर दिया है, अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है । इसलिए हम सब लोग प्रजा की हितौषिणी श्रीमती-राजराजेश्वरी क्वीन महारानी विक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य में से छुड़वाके अति प्रसन्न होना चाहते है ।

यह हम को पूरा विश्वास है कि विद्या, धर्म, प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन महारानी विक्टोरिया पार्लियामेण्ट सभा तथा सर्वोपरि प्रधान आयावर्त्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहुदुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह तथा प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सब को परम आनन्दित करें । देखिए कि उक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्यप्रति अधिक-अधिक होती जाती है । पक्षपात छोड़के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म और पर हानि को अधर्म निश्चित जानता है । क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस-जिस से अधिक उपकार हो, उस-अस का पालन वर्धन करना और नाश कभी न करना । परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में हमें ऐकमत्य करें ।

संसार के राजा, महाराजाओं से विनति करके महर्षि दयानन्द ने संसार के अधिपति परमेश्वर से भी प्रार्थना की- 'हे महाराजाधिराज मजगदीश्वर ! जो इनको कोई न बचावे तो आप उनकी रक्षा करने और हम से करानो में शीघ्र उद्यत हूजिए ।'

दुःखदायी है, दुःख में डालता है और ज्ञान बिना कर्म में परिणत हुए और भी अन्धकारमय है। बाह्य ज्ञान बिना कर्म निरर्थक, शुष्क, तर्क-वितर्क से अपनी बुद्धि को पागल बनाना है, बुद्धि जैसी अमूल्य वस्तु पर व्यर्थ बोझ लादना है, उसे परास्त करना है।

२) आन्तरिक कर्म- पंतजलि महाराज ने कहा है-

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

अर्थात् तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर भक्ति) क्रियायोग है।

भक्ति आन्तरिक कर्म है। आन्तरिक ज्ञान बिना आन्तरिक कर्म के अपने को जड़ बनाना है। जब वह किसी आचरण में नहीं आये तो मरने के साथ विनष्ट हो गया।

मार्ग का वास्तविक रूप-

मार्ग का वास्तविक रूप तो यह है कि प्राप्त ज्ञान कर्म में आये-जाये और कर्म किया हुआ प्रभु-समर्पण हो जाये यह भक्ति है। भक्ति तो वह वस्तु है जिससे वास्तविक ज्ञान की उत्पत्ति होती है और वह ज्ञान क्रिया में जब तक परिणत न हो जाये, ज्ञानी को निठल्ला बैठने ही नहीं देता।

तुम सोचो। भक्त सदा भगवान् की सहवास करता है तो भगवान के गुण, कर्म, स्वभाव उसमें आने चाहिए। भगवान् एक क्षण भी निकम्मा नहीं रहता। सारे संसार विश्व के जीवों के दुःखहरण और सुख देने में लगा हुआ। प्रभु के सारे जड़ देवता भी एक क्षण निकम्मे निठल्ले नहीं रहते। संसार के जीवों के हित और कल्याण में अपना सर्वस्व दिये हुए हैं और सबका दुःख हरण कर रहे हैं। फिर भक्त एक चेतन सत्ता वाला होकर केवल अपने में शान्ति और तृप्ति में मस्त रहे तो प्रभु का कौन सा गुण उसमें काम कर रहा होगा?

पुत्र- जब भक्त ने भगवान् को जान लिया तो शेष उसके जिम्मे और क्या कर्म रहा। सबसे कठिन कर्म तो यही भगवान् का जानना है।

प्रभु की असीम महिमा-

पिता- ओहो पुत्र! कितने तुम सरल हो। भगवान् तो अनन्तस्वरूप है उसे कौन पूर्ण जान सका या जान सकता है अथवा जान सकेगा। मनुष्य तो अपने मन की गतिविधि को अब तक पूर्ण नहीं जान पाया। मन की अनन्त असंख्यात वृत्तियां हैं। मनुष्य को पता ही नहीं लग पाता। संसार की किसी भी एक वस्तु का पूर्ण ज्ञान कोई वैज्ञानिक आज तक नहीं कर सका। वनस्पति विशेषज्ञ को एक वनस्पति का ज्ञान है तो दूसरी का नहीं और जिस एक को जानता भी है तो अभी अन्य बातों का उसमें ज्ञान प्राप्त करना शेष रहा होता है। नक्षत्र विद्या विशेषज्ञ अब तक उन कतिपय नक्षत्रों को नहीं जान पाये जिनका प्रकाश अब तक आदि सृष्टि से नहीं पहुँच सका। विश्व की एक छोटी से छोटी वस्तु के सम्बन्ध में मनुष्य अपने को पूरा ज्ञानी कहने का साहस नहीं कर सकता। तब उस विश्व के आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में पूरे ज्ञानी होने का अभिमान कैसे कर सकता है। अपने शरीर को भी ठीक-ठीक नहीं जान सकता। उपनिषत्कार तो बारम्बार यही कहते हैं कि यह परमात्मा कान, आँख, वाणी तथा प्राण मन से नहीं जाना जाता इसकी पहुँच से बाहर है। वेद ने कहा है-

आत्मनात्मानमभि संविवेश।

अर्थात् परमात्मा की आत्मभाव से उपासना की जाती है।

पुत्र- जब इन्द्रियों से वह परे है, फिर भी भक्त लोग तो जप ही करते हैं। ध्यान भी तो मन से करते हैं फिर उनको आनन्द कैसा?

पिता- पुत्र! सब दुःख और सुख तो लगाव आसक्ति में है। वस्तु तथा व्यक्ति के साथ आसक्ति है। संयोग है और उसका वियोग हो गया तो दुःख हो रहा है।

ये लोग संसार के विषय में लिप्त नहीं होते। निर्वाह मात्र वस्तु व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। न मिलने पर भी सन्तोष और मिलने पर भी सन्तोष। इनको शान्ति केवल सन्तोष से है। एक प्रतीति बनी हुई है हम प्रभु के हैं, प्रभु हमारे हैं। हम प्रभु का दिन-रात चिन्तन करते हैं। चाहे वह वाणी से करते हैं। फिर भी आत्मा की भावना के बिना तो नहीं करते। आत्मभावत्व उनका सही है परन्तु वह अंश से, एक इन्द्रिय से भक्ति करते हैं। लोगों के दुःख-सुख से उपराम रहते हैं, इस सन्तोष से कि यह शरीर का धर्म है। दुःख-सुख और संसार में ऐसा होता रहता है। अर्थात् उनके पास आंशिक सत्य होता है। उसी से वे सन्तुष्ट हो गये। इसका जन्म के लिए कोई विशेष कर्म तो किया नहीं। फिर पूर्व जन्मों के बचे संस्कार और कर्म तो फल भुगतवायेंगे ही।

हां, प्रभु को ब्रह्म को जिसने ज्ञान द्वारा कुछ जान लिया और उसी जानने में लगा रहा तो अधिकाधिक जानता जायेगा। ब्रह्म के सम्बन्ध में कभी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी ने पूर्ण जान लिया। अथवा सर्वतः नहीं जाना। न तो यह कि वह सर्वतः जानने योग्य नहीं है। न यह है कि वह पूर्ण जानने योग्य है। यदि वह सर्वतः जानने योग्य न हो तो फिर वह अभाव हुआ और यदि वह जानने में आ जाये तो प्रभु सीमित हो गया। अलपज्ञ उस सर्वज्ञ को जान गया तो फिर वह सर्वज्ञ इस अल्पज्ञ से भी छोटा हुआ। जो वस्तु जिसकी पकड़ में आ जाये वह तो फिर उस पकड़ने वाले से कम (न्यून) ही समझनी चाहिए। बड़ी कैसे समझा जाए?

वेद भगवान् ने तो इस बात को स्पष्ट ही कर दिया-

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

अर्थात् यह विश्व जगत् (जिसकी एक-एक वस्तु का भी अन्त नहीं पाया जा सकता) उसका एक पाद है उस प्रभु की महिमा तो बेअन्त ही है।

गोलीबारी में मारे गए थे । बड़ी त्रासदी हो गई थी और सरकार के लिए इसे दबाना जरूरी था । ट्रक बुलाकर मृत, घायल, जिंदा-सभी को उसमें ठूंसा जाने लगा । जिन घायलों के बचने की संभावना थी, उनकी भी ट्रक में लाशों के नीचे दबकर मौत हो गई । पूरे शहर में कर्फ्यू लागू कर दिया गया और संतों को तिहाड़ जेल में ठूंस दिया गया । केवल शंकराचार्य को छोड़ कर अन्य सभी संतों को तिहाड़ जेल में डाल दिया गया । कपात्री जी महाराज ने जेल से ही सत्याग्रह शुरू कर दिया । जेल उनके ओजस्वी भाषणों से गूंजने लगा । उस समय जेल में करीब ५० हजार लोगों को ठूंसा गया था ।''

रामरंग जी के अनुसार, शहर की टेलिफोन लाइन काट दी गई । ८ नवंबर की रात आचार्य सोहनलाल रामरंग को भी घर से उठा कर तिहाड़ जेल पहुंचा दिया गया । प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने गुलजारीलाल नंदा पर इस पूरे गोलीकांड की जिम्मेवारी डालते हुए उनका इस्तीफा ले लिया । जबकि सच यह था कि गुलजारीलाल नंदा गो हत्या कानून के पक्ष में थे और वह किसी भी सूरत में संतों पर गोली चलाने के पक्षधर नहीं थे, लेकिन इंदिरा गांधी को तो बलि का बकरा चाहिए था । गुलजारीलाल नंदा को इसकी सजा मिली और उसके बाद कभी भी इंदिरा ने उन्हें अपने किसी मंतरिमंडल में स्थान नहीं दिया । तत्काल महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री व चीन से हार के बाद देश के रक्षा मंत्री बने यशवंत राव बलवतंतराव चौहान को गृहमंत्री बना दिया गया । रामरंग जी के अनुसार, लगभग एक माह के बाद लोगों को जेल से छोड़ने का सिलसिला शुरू हुआ । करपात्री जी महाराज को भी एक माह बाद छोड़ा गया । जेल से निकल कर भी उनका सत्याग्रह जारी था । पुरी के शंकराचार्य और प्रभुदत्त ब्रहमचारी जी का आमरण अनशन महीनों चला । बाद में सरकार ने इस आंदोलन को समाप्त करने के लिए धोखे का सहारा लिया । यशवंत राव बलवंतराव चौहान ने करपात्री जी महाराज से भेंट कर यह आश्वासन दिया कि अगले संसद सत्र में गो हत्या बंदी कानून बनाने के लिए अध्यादेश लाया जाएगा और इसे कानून बना दिया जाएगा, लेकिन आज तक यह कानून का रूप नहीं ले सका है ।

७ नवंबर १९६६ को गोरक्षा आन्दोलन का चरम रूप देखने को मिला था । बाद में सरकार ने इस पूरे घटनाक्रम को एक तरह से दबा दिया, जिसकी वजह से गोरक्षा के लिए किए गए उस बड़े आंदोलन और सरकार के खूनी कृत्य से आज की युवा पीढ़ी अनजान है ।

इन पंक्तियों के लेखक का गोरक्षा आन्दोलन का इतिहास पाठकों के समक्ष रखने का मुख्य आशय यह है कि समस्त हिन्दुओं और आर्यों को गौमाता के महत्व का तो ज्ञान है परन्तु गौमाता की रक्षा हेतु जो चेतना और संवेदना होनी चाहिए, उसके लिए उन्हें जागरित भी किया जाना चाहिए । जहां हमें इस देश से गोहत्या के कलंक को मिटाने का अपना अभियान और आन्दोलन जारी रखना है, वहीं इस देश की विभिन्नता और सांस्कृतिक ढांचे में भिन्नता के कारण और राजनीतिक कारों से आजकल जो मतभेद दिखाई दे रहे हैं, उन पर भी शांत चित्त से विचार कर इस समस्या का कोई सर्वसम्मत हल निकाला जाना चाहिए । हम अपने स्तर पर भी कुछ प्रयास कर सकते हैं । सर्वप्रथम यह कि हमें अपनी बूढ़ी और जर्जर गायों की स्वयं सेवा करनी चाहिए या हम नगर या जिला स्तर पर एक ऐसी गोशाला बनाएं जो दान आदि आधार पर चलाई जाये और उसमें ऐसी गायों की सेवा की जाये । गाय किसी भी स्थिति में गोभक्षकों के हाथ तक न पहुंचने पाये । दूसरे कृषि के यांत्रिकीकरण से आजकल बैल निष्प्रयोज्य हो गए हैं, अत हमें बैल को भी कृषि या अन्य कार्य हेतु उपयोग में लाना होगा, अन्यथा इनकी भी हत्या गोभक्षकों द्वारा की जा सकती है । गोरक्षा के मामले को हल करने के लिए सभी पक्षों को विश्वास में लेकर उन दो / तीन राज्यों केरल, अरुणाचल प्रदेश आदि में गोरक्षा कानून को पास कराना होगा । साथ ही कई राज्यों में, जहाँ गोरक्षा कानून तो हे, परन्तु सरकारों की लापरवाही या राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी के चलते इसका पालन सख्ती की कमी के चलते इसका पालन सख्ती से लागी नहीं हो पा रहा है, वहां भी गोरखा कानून का पालन करवाना होगा । कानून तो आवश्यक है, परन्तु समाज में लोगों की मानसिकता को बदलना भी बहुत आवश्यक है । गौमाता के मुद्दे को धर्म, सम्प्रदाय और राजनीति से दूर रखना गोरक्षा के लिए आवश्यक है ।

शेष पृ. ३ से......

उनकी प्राथमिकता उपनिषदों से प्रारम्भ होती है । हालांकि वेदों को तो वे भी उच्च स्थान देते हैं परन्तु प्रचार नहीं करते । यदि हम समय-समय पर वेद के मन्त्रों को सरल ढंग से समझाते रहेंगे तो इसका प्रभाव अवश्यमेव अच्छा होगा । हमें यह भी प्रचार करना चाहिए कि वेद मन्त्र इतने कठिन नहीं हैं जितना कि प्रचार किया गया है कि वेद के मन्त्रों को समझना बहुत दुष्कर है ।

५) प्रायः लोग कहते हैं कि हमारे पास समय नहीं है वहाँ मन्दिर, गुरुद्वारे, मजार पर गए हाथ जोड़े माथा टेका प्रार्थना की बस काम खत्म जब कि हवन के लिए कम से कम आधा घँटा तो लगाना ही पड़ेगा । उन्हें समझाना चाहिए कि हवन से केवल आप ही का नहीं अपितु प्राणी मात्र का कल्याण होता है । वायु प्रदूषण समाप्त होता है रोगाणुओं के नष्ट होने से बीमारियाँ दूर होती है । पेड़ पौधों का कल्याण होता है, प्राणियों का कल्याण होता है ।

६) प्रायः यह भी कहा जाता है कि हमें संस्कृत नहीं आती परन्तु गुरुवाणी कौन से पंजाबी में है, कुरान की आयते कौन सी उर्दू में है और बाइबल कौन सी अंग्रेजी में है । समाज में आने से मन्त्र अपने आप याद होने लगते हैं । बहुत से अनपढ़ भी मन्त्रों का उच्चारण भली प्रकार कर लेते हैं । इसलिए यह इतना कठिन नहीं । वेदवाणी तो ईश्वर प्रदत्त है हमें उसी का अनुसरण करना चाहिए।

जड़ पूजा कहाँ तक उचित है ? मजारों, कब्रों से आप क्या अपेक्षा कर सकते है । आजकल तो चार ईंटें जोड़ कर रख देते है, ऊपर हरी चादर बिछा दी जाती है और वह मजार बन कर आस्था का केन्द्र बना दिया जाता है । हम इन पद्धतियों द्वारा परमात्मा का कहाँ पूजा करते हैं ?

हमें कम से कम अपने विद्यालयों में प्रत्येक विद्यार्थी को वैदिक विचारधारा से, हवन पद्धति से अवगत करवाना चाहिए ताकि बड़े होकर वे हमारे समाज में वैदिक पद्धति का प्रचार कर सकें ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए गोरक्षा अभियान- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गौमाता की रखा के लिए अनेक अभियान और आन्दोलन किए गए जिनमें कुछ का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है-

सन् १९४६ में देश में कांग्रेस की अन्तरिम सरकार बनी थी। सरकार के द्वारा पूर्व में नेताओं की घोषणाओं की उपेक्षा करने पर दिसम्बर १९४६ में बम्बई में एक 'विराट गोरक्षासम्मेलन' श्रीकरपात्रीजी की अध्यक्षता में किया गया था, जिसमें सर्वसम्मत निश्चय से यह घोषणा की गई थी कि यदि अक्षय तृतीया, वि.सं.२००३, तदनुसार २८ अप्रैल १९४७ तक सम्मेलन के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया गया तो 'अखिल भारतीय धर्मसंघ' देश की राजधानी दिल्ली में सम्पूर्ण गोहत्या-बंदी के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ कर देगा।

अक्षय तृतीय के अवसर पर दिनांक २८ अप्रैल १९४७ को श्रीकरपात्रीजी के नेत्रत्व में संविधान-निर्मातृ-परिषद् के भवन के समक्ष 'गोहत्या बंद हो' के गगन भेदी नारे लगाकर सत्याग्र किया गया। इस आन्दोलन में विभिन्न सम्प्रदायों के ५-६ सहस्र की संख्या में आचार्यों, साधु-संतों और सद्गृहस्थों को जेल-यात्रा करनी पड़ी और यही भी कहा गया है कि कुछ महात्माओं- जैसे श्रीस्वामी मुकुन्दाश्रमजी, श्रीस्वामी कृष्णानन्द तीर्थजी और गोस्वामी लक्ष्णाचार्यजी ने अपने भौतिक शरीरों का भी बलिदान कर दिया था।

'अखिल भारतीय रामराज्य-परिषद् द्वारा सन् १९४९-५० में दिल्ली में गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए सक्रिय आन्दोलन किया गया था।

सन् १९५२ में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक-संग द्वारा दो करोड़ लोगों के हस्ताक्षर कराकर देश में गौ-वंश की हत्या पर कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगाने की मांग की गई थी।

सन् १९५४ में प्रयाग कुम्भ के अवसर पर 'गोरक्षा-सम्मेलन' का आयोजन किया गया था। इसके श्रीप्रभुदत्तजी अध्यक्ष चुने गए थे। समिति के निश्चयानुसार पटना और लखनऊ में गोरक्षा सत्याग्रह किए गए। बिहार सरकार ने 'गोहत्या-बंदी कानून' बनाना स्वीकार कर लिया था। इसके बाद उत्तर प्रदेश में गोविन्दवल्लभ पन्त ने राज्य मंत्रिमण्डल में भी कानून बनाना स्वीकार किया और इस प्रदेश में भी 'गोहत्या-बंदी कानून' बनाया गया। सन् १९५४-५५ में देश की गोभक्त संस्थाओं और नेताओं के सहयोग से गोरक्षा के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाया गया। देश के चार प्रमुख नगरों- कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद और राजधानी दिल्ली में समिति के अह्वान पर 'गोहत्या-बंदी' की मांग को लेकर जोरदार आन्दोलन किया गया जिसमें ६० हजार से अधिक गोभक्तों ने जेल-यात्रा की थी।

भारत सरकार द्वारा गोहत्या के प्रश्न पर कोई सकारात्मक निर्णय न लेने के कारण परपात्रीजी महाराज ने एक बार पुनः अप्रैल १९६२ में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर देश के गोभक्तों का आह्वान किया और 'अखिल भारतीय धर्मसंघ' के तत्त्वावधान में एक विशाल 'गोरक्षा-सम्मेलन' हुआ। यह आन्दोलन विदर्भ आदि अनेक नगरों में भी किया गया, परन्तु इस आन्दोलन से भी कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ।

अगस्त १९६४ में श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी के सबल सहयोग से "भारत गोरक्षा-सम्मेलन' का वृन्दावन में आयोजन किया गया, परन्तु इसका भी कोई ठोस परिणाम नहीं निकला।

गोरक्षा महाभियान समिति के तत्कालीन मंत्रियों में से एक मंत्री और पूरी घटना के गवाह, प्रसिद्ध इतिहासकार एवं लेखक आचार्य सोहनलाल रामरंग के अनुसार, ७ नवंबर १९६६ की सुबह आठ बजे से ही संसद के बाहर लोग जुटने शुरू हो गए थे। उस दिन कार्तिक मास, शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि थी, जिसे पौराणिक लोग गोपाष्ठमी के नाम से मनाते हैं। गोरक्षा महाभियान समिति के संचालक व सनातनी करपात्री जी महाराज ने चांदनी चौक स्थित आर्य समाज मंदिर से अपना सत्याग्रह आरंभ किया। कपात्री जी महाराज के नेतृत्व में जगन्नाथपुरी, ज्योतिष पीठ व द्वारका पीठ के शंकराचार्य, वल्लभ संप्रदाय के सातों पीठ के पीठाधिपति, रामानुज संप्रदाय, मध्व संप्रदाय, समानंदाचार्य आर्य समाज, नाथ संप्रदाय, जैन, बौद्ध व सिख समाज के प्रतिनिधि सिखों के निहंग व हजारों की संख्या मे मौजूद नागा साधुओं को पंडित लक्ष्मीनारायण जी ने चंदन तिलक लगाकर विदा कर रहे थे। लालकिला मैदान से आरंभ होकर नई सड़क व चावड़ी बाजार से होते हुए पटेल चौक के पास से संसद भवन पहुँचने के लिए इस विशाल जुलूस ने पैदल चलना आरंभ किया। रास्ते में अपने घरों से लोग फूलों की वर्षा कर रहे थे। हर गली फूलों का बिछौना बन गया था। "आचार्य सहनलाल रामरंग के अनुसार", यह हिंदू समाज के लिए सबसे बड़ा ऐतिहासिक दिन था। इतने विवाद और अहं की लड़ाई होते हुए भी सभी शंकराचार्य और पीठाधिपतियों ने अपने छत्र, सिंहासन आदि का त्याग किया और पैदल चलते हुए संसद भवन के पास मंच पर समान कतार मे बैठे। उसके बाद से आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ। नई दिल्ली का पूरा इलाका लोगों की भीड़ से भरा था। संसद गेट से लेकर चांदनी चौक तक सिर ही सिर दिखाई दे रहा था। कम से कम १० लाख लोगों की भीड़ जुटी थी, जिसमें १० से २० हजार तो केवल महिलाएं ही शामिल थीं। जम्मू-कश्मीर से लेकर केरल तक के लोग गो हत्या बंद कराने के लिए क़ानून बनाने की मांग लेकर संसद के समक्ष जुटे थे। उस वक्त इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं और गुलजारी लाल नंदा गृहमंत्री थे। गो हत्या रोकने के लिए इंदिरा सरकार केवल आश्वासन ही दे रही थी, ठोस कदम कुछ भी हीं उठा रही थी। सरकार के झूठे वादे से उकता कर संत समाज ने संसद के बाहर प्रदर्शन करने का निर्णय लिया था।"

रामरंग जी के अनुसार, "दोपहर एक बजे जुलूस संसद भवन पर पहुंच गया और संत समाज के संबोधन का सिलसिला शुरू हुआ। करीब तीन बजे का समय होगा, जब आर्य समाज के स्वामी रामेश्वरानंद भाषण देने के लिए खड़े हुए। स्वामी रामेश्वरानंद ने कहा, 'यह सरकार बहरी है। यह गो हत्या को रोकने के लिए कोई भी ठोस कदम नहीं उठाएगी। इसे झकझोरना होगा। मैं यहां उपस्थित सभी लोगों से आह्वान करता हूं कि सभी संसद के अंदर घुस जाओ और सारे सांसदों को खींच-खींच कर बाहर ले आओ, तभी गो हत्या बंदी कानून बन सकेगा।'

इस भाषण को सुनकर नौजवान संसद भवन की दीवार फांद-फांद कर अंदर घुसने लगे। लोगों ने संसद भवन को घेर लिया और दरवाजा तोड़ने के लिए आगे बढ़े। पुलिसकर्मी पहले से ही लाठी-बंदूक के साथ तैनात थे। पुलिस ने लाठी और अश्रुगैस चलाना शुरू कर दिया। भीड़ और आक्रामक हो गई। इतने में अंदर से गोली चलाने का आदेश हुआ और पुलिस ने भीड़ पर अंधाधुंध फायरिंग शुरु कर दी। संसद के सामने की पूरी सड़क खून से लाल हो गई। लोग मर रहे थे, एक-दूसरे के शरीर पर गिर रहे थे और पुलिस की गोलीबारी जारी थी। एक अनुमान के अनुसार नहीं भी तो कम से कम, पांच हजार लोग उस

जो इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया को सम्बोधित था। उनका प्रयास था कि देशके करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर कराकर इसे वह महारानी विक्टोरिया को भेजेंगे। कार्य तीव्र गति से चल रहा था। लाखों वा करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर करा लिये गये थे और कुछ करने शेष थे। इसी बीच उनके विरोधियों ने विष देकर उनका जीवन समाप्त कर दिया। इससे हानि यह हुई कि गोरक्षा, गोसंवर्धन वा गोहत्या बन्दी का काम बीच में अधूरा ही छूट गया। यह भी बता दें कि गांधी जी भी गोरक्षा के प्रबल समर्थक थे। उका यंग इण्डिया में गोरक्षा के समर्थन और गोवध के विरुद्ध लिखा गया लेख उपलब्ध है जिसमें उन्होंने गोरक्षा के विरोधियों के प्रति कठोर कार्यवाही का समर्थन किया है। अतः यदि ऋषि दयानन्द कुछ और वर्ष जीवित रहते या गांधी जी जीवित रहे होते तो अुमान है कि वह देश में गोहत्या तो किसी कीमत पर न होने देते। हम यह भी बता दें कि स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक गोकरुणानिधि में गाय से होने वाले आर्थिक लाभों की गणमना कर सिद्ध किया है कि गोरक्षा देश की खाद्यान्न सुरक्षा की गारण्टी है। सभी देशवासियों को इसे निष्पक्ष भाव से पढ़ना चाहिये।

संसार में मांसाहार इस लिए भी बढ़ रहा है कि मांसाहार करने वाले लोगों को मांसाहार के सभी पहलुओं व हानियों का ज्ञान नहीं है। जो लोग पढ़े लिखे व समझदार हैं वह विवेक की कमी, अपनी जीभ के स्वाद व कुछ धार्मिक व अन्य कारणों से इसका प्रचार नहीं करते और न ही आम जनता के सामने सत्य पक्ष को रखते हैं। कई तों ने इसे अपने धर्म से भी जोड़ रखा है जिसका कारण उनके मतों में इसके पक्ष में कुछ उल्लेख मिलते हैं जो मांसाहार के पोषक हैं। हमारी दृष्टि में उन उल्लेखों को आपद धर्म मानकर मांसाहार को सर्वथा छोड़ देना चाहिये। जब साधारण व अज्ञानी मनुष्यों पर प्राण रक्षा का संकट आ जाये तो उस समय वह अपने जीवन की रक्षा के लिए अभक्ष्य पदार्थ का सेवन कर लेते हैं परन्तु सामान्य स्थिति में जब अन्य भक्ष्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों, तब मांसाहार करना रोगों सहित अल्पायु को आमंत्रित करने के साथ कर्मफल सिद्धान्त के अनुसार जन्म-जन्मान्तर में पशुओं के समान जीवन व पीड़ा का भोग कराने वाला होगा। परजन्मों में हमारी स्थिति वैसी ही होगी जैसी की इस जन्म में हमारे निमित्त से अन्य प्राणियों की हुई है। हम समझते हैं कि यदि संसार के सभी लोग ज्ञानी व बुद्धिमान होते और उन्होंने वैदिक धर्म के सिद्धान्तों व उसकी युक्तियों सहित लाभ व हानि को जाना व समझा होता तो वह पवित्र बुद्धि होकर गोहत्या व गोमांसाहार में प्रवृत्त होने का निन्दित कर्म कदापि न करते। यदि हम मांसाहार नहीं करते तो इसका कारण केवल हमारा ज्ञान व विवेक है। यही ज्ञान व विवेक इतर मत-मतान्तरों व लोगों में भी होता तो वह हमारी ही तरह गोरक्षा के समर्थक और गोहत्या व गोमांस के विरोधी होते। यहां भी मत-मतान्तरों की कुछ शिक्षायें व मनुष्यों का अविवेक ही इस समस्या के मूल में ज्ञात होता है।

आर्य समाज के संस्थापक, वेद और वैदिक साहित्य के द्रष्टा ऋषि दयानन्द ने एक लघु ग्रन्थ **'गोकरुणानिधि'** की रचना की थी। इसकी सवेषणापूर्ण भूमिका के कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं जो गोरक्षा के महत्व पर प्रकास डालते हैं। ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि 'वे धर्मात्मा, विद्वान लोग धन्य हैं, जो ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव, ड्ठभिप्राय, सृष्टि-क्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण और आप्तों के आचार से अविरुद्ध चल कर सब संसार को सुख पहुंचाते हैं और शोक है उन पर जो कि इनसे विरुद्ध स्वार्थी, दयाहीन होकर जगत् की हानि करने के लिए वर्तमान हैं। पूजनीय जन वो हैं जो अपनी हानि हो तो भी सबका हित करने में अपना तन, मन, धन सब-कुछ लगाते हैं और **तिरस्करणीय वे हैं जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रहकर अन्य के सुखों का नाश करते हैं।** वह आगे लिखते हैं कि सृष्टि में ऐसा कौन मनुष्य होगा जो सुख और दुःख को स्वयं न मानता हो? **क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है कि जिसके गले को काटे वा रक्षा करें, वह दुःख और सुख को अनुभव न करे? जब सबको लाभ और सुख ही में प्रसन्नता है, तब बिना अपराध किसी प्राणी का प्राण वियोग करके अपना पोषण करना सत्पुरुषों के सामने न्द्यि कर्म क्यों न होवे?** सर्वशक्तिमान जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों की आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि **जिससे ये सब दया और न्याययुक्त होकर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का विनाश न करें कि जिससे दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रिया की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनन्द में रहें।'**

महर्षि दयानन्द ने एक गाय की एक पीढ़ी से उत्पन्न बछिया और बैलों से होने वाले दुग्ध व अन्न का गणित व अर्थशास्त्र के अनुसार हिसाब लगाया है और सिद्ध किया कि एक गाय की एक पीढ़ी से ४,१०,४४० मनुष्यों का पालन एक समय व एक बार के भोजन के रूप में होता है। यदि गाय की उत्तरोतर सन्ततियों पर विचार करें तो गाय से असंख्य मनुष्यों का पालन होता है। गाय का मांसाहार करने से केवल अस्सी मनुष्य एक बार के भोजन के रूप में तृप्त हो सकते हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए वह कहते हैं कि **'देखो! तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं?' गाय के ही समान ऋषि दयानन्द ने भैंस,** ऊंटनी व बकरी से मिलने वाले दूध व उससे होने वाले भोजन संबंधी आर्थिक लाभ की गणना कर भी इन पशुओं की रक्षा का भी आह्वान व समर्थन किया है। मनुष्य उसे कहते हैं जो मननशील हो। अपने व दूसरों के सुख, दुःख व हानि लाभ को समझे। यदि मनुष्य ऐसा होगा तो वह न तो गोहत्या करेगा, न गोमांस व अन्य पशुओं का ही मांस खायेगा। हमने निष्पक्ष भाव से यह लेख लिखा है। लोग मानवीय व देश के आर्थिक हितों के दृष्टिकोण से इस पर विचार करें तो उन्हें अपने कर्तव्य का वोध हो सकेगा। हमें यह भी आश्चर्य होता है कि लोग कागज के नोटों व जड़ पदार्थों की रक्षा में तो अपना जीवन व्यतीत करने सहित अपने प्राणों को भी दांव पर लगा देते हैं परन्तु ईश्वर द्वारा हमारे हित के लिए बनाये गये गाय आदि प्राणियों पर निर्दयता का व्यवहार करते हैं। उन्हें किस आधार पर मनुष्य कहें हमें समझ में नहीं आता?

'माता के समान हितकारी गाय की रक्षा करना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य व धर्म'

-मनमोहन कुमार आर्य

संसार के जिनते भी देश है या यह कहिये कि पृथिवी तल पर जहां-जहां भी मनुष्य है, वहां-वहां गाय भी विद्यमान है । यह व्यवस्था ईश्वर ने मनुष्यों के हितों को देखकर की है । यदि उसे मनुष्य का हित करना अभीष्ट न होता तो ईश्वर गाय को बनाता ही नहीं । मनुष्यों को अपने हित व स्वार्थपूर्ति के लिए गाय की आवश्यकता है, गाय को मनुष्यों की आवश्यकता नहीं है । बिना गाय के मनुष्य का जीवन जल व वायु रहित जीवन के समान होता । गाय एक पालतू पशु है । यदि हम संसार के सभी पशुओं की गणमना कर उनसे मनुष्य जीवन को होने वाले लाभों की दृष्टि से तुलना करें तो यह पायेंगे कि सभी पशुओं में गाय ही ऐसा प्राणी है जो मनुष्य के जीवन को चलाने, बढ़ाने, बुद्धि को तीव्र व सूक्ष्म बनाने तथा रोगों से दूर रखने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमका निभाती है । इस दृष्टि से अन्य पशुओं का योगदान गौण है । मां के दूध की तरह गोमाता का दूध भी मनुष्यों के लिए पूर्ण आहार होता है । बच्चा हो या युवा अथवा वृद्ध, गाय का दूध सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए उपयोगी, क्षुधा को दूर करने वाला, स्वाश्थ्यवर्धक, बलवर्धक, आरोग्यकारक, आयुवर्धक, बुद्धिबल विस्तारक, मनुष्य, समाज व राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने वाला आदि अनेकानेक गुणों से युक्त है । यदि संसार में गाय न होती तो हमें लगता है कि संसार में मनुष्य भी न होता । कारण कि तब कृषि के लिए बैल व खाद कहा से मिलते ? मनुष्य व गाय, दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं । गाय के इन्हीं गुणों के कारण वेदों में गोरक्षा पर पर्याप्त शिक्षायें, विचार व ज्ञानयुक्त कथन मिलते हैं । वेद गो को विश्व की माता बताने के साथ इसे विश्व की नाभि भी घोषित करते हैं । गो-हत्यारों के लिए मृत्यु दण्ड का प्राविधान करते हैं । यह व्यवस्था ईश्वर की, वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण है न की अल्पज्ञ व मलिन बुद्धि के मनुष्यों की । आश्चर्य होता है कि कोई विवेकशील व अल्पज्ञानी मनुष्य ऐसे उपयोगी पशु की हिंसा की वकालत व उसके मांस को क्षत्र्य मानने की मूर्खता भी कर सकता है ? अपवित्र बुद्धि के लोगों में ही गोहत्या एव उसके मांस के भक्षण की इच्छा हो सकती है । जो भी गाय का मांस खाता है वह ईश्वर व मनुष्य की जीवात्मा के स्वरूप व कर्मफल विधान से पूरी तरह अनभिज्ञ है और यह अनभिज्ञता उसे मूर्ख व अज्ञान सिद्ध करती ही ।

वैदिक धर्म में चेतन देवताओं में, ईश्वर के बाद, माता का स्थान आता है । ऐसा क्यों है व इसके पीछे क्या रहस्य वा तर्क हैं ? माता बच्चे की जीवात्मा को अपने गर्भ में रखकर उसके शरीर के निर्माण में सहायक होती है और उसे जन्म देने के साथ उसका लालन व पालन भी करती है । यह कार्य किसी सन्तान के प्रति केवल जन्मदात्री मां ही करती है, अतः माता का स्थान किसी भी सन्तान के लिए सर्वोपरि होता है । गाय गोदुग्ध, गोमूत्र व गोबर प्रदान करती है । गोदुग्ध से दही, घृत, मक्खन, मट्ठा, पनीर, खीर, स्वादिष्ट व्यंजन व मिठाईयां आदि अनेक पदार्थ बनते हैं जो मनुष्य के लिए स्वास्थ्यवर्धक होने के साथ उसकी क्षुधा वा मूख को मिटाते हैं । गोदुग्ध का स्थान अन्न के समान व उससे भी ऊपर है, कारण यह है कि गोदुग्ध पूर्ण आहार है जबकि अलग-अग अन्न में अपने-अपने विशिष्ट गुण होते हैं और उसे स्वतन्त्र वा अकेले न खाकर अन्य पदार्थो घृत, तेल, नमक, मिर्च, मसाले आदि मिलाकर व उन्हें रसोईघर में पकाकर सेवन किया जाता है जिसके लिए रसोई के नाना प्रार के सामानों चूल्हे, ईधन, बर्तनों आदि की आवश्यकता होती है । गोदुग्ध ऐसा पूर्ण आहार है जिसे बिना किसी अन्न व रसोई आदि के सामान की अनुपस्थिति में भी सेवन करके स्वस्थ व बलवान रहा जा सकता है । हमारी माताओं का शरीर जिसमें ईश्व सन्तान का निर्माण करते हैं, उसे भी जिन खाद्य पदार्थ अर्थात् भोजन की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति भी गोदुग्ध व इससे बने पदार्थों से हो जाती है । इस विषय में यह भी कह सकते हैं कि अन्न व फलों की तुलना में गाय व गोदुग्ध आसानी से बारह महीनों व वर्ष के ३६५ दिन उपलब्ध होता है । माता व सन्तान के शरीरों व उसके प्रत्येक अंग की रचना में गोदुग्ध का महत्वपूर्ण स्थान है । यदि गोदुग्ध न होता तो माता, पिता, सन्तान व अन्य मनुष्यों के शरीर भी न होते । अतः माता व सन्तान दोनों को जीवन देने का काम गोमाता व उसका दुग्ध करता है । इस दृष्टि से गो एक पशु न होकर हमारी जन्मदायिनी माता के समान व उससे भी कई बातों में कुछ अधिक ही सिद्ध होती है । यही कारण है कि वेदों से लेकर हमारे महाप्रज्ञा के धनी ऋषियों ने गो व गोदुग्ध की महत्ता गाई है और गो को अवध्य कहने के साथ गोत्यारों के गोहत्या के अधम कृत्य के लिए मनुष्य हत्या के समान पाप मानते हुए उसे मार देने का विधान किया है । यह विधान गोमाता के महत्व की दृष्टि से उचित ही है । यहां यह भी विचारणीय एवं जानने योग्य है कि गाय से हमें उसके बच्चे गाय व बैल भी मिलते हैं । गाय से गोदुग्ध आदि अमृत तुल्य आरोग्य एवं बल वर्धक पदार्थों की प्राप्ति होती है तो बैल हमारे खेतों में हल के द्वारा जुताई व बुआई में सहायक होते हैं जिससे हमें भरपूर अन्न तो मिलता ही है साथ ही कृषि के लिए सर्वोत्म व बिना मूल्य का खाद, बैल का गोबर व मूत्र भी मिलता है जो खाद के साथ कीटनाशक का कार्य भी करता है । यह अब उपलब्धियां बिना मूल्य एक गाय से हमें होती हैं ।

ऋषि दयानन्द ने देश में सबसे पहले गोरक्षा का कार्य किया और गोहत्या बन्द करने की मांग की थी । इसके लिए उन्होंने एक आन्दोलन भी किया था और गोहत्या बन्द करने के लिए एक मैमोरैन्डम तैयार किया था

याज्ञिक परम्परा में महर्षि दयानन्द का अप्रतिम योगदान

-कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

उवट, महीधर और सायणाचार्य आदि भाष्कारों का विचार था कि वेद में वर्णित अग्नि, इन्द्र, वरूण, मित्र आदि कल्पित स्वर्ग में रहने वाले देवता हैं। ये देवता पृथ्वी पर दिखाई देने वाले अग्नि, वायु और जलादि पदार्थों का और आकाश में दिखाई देने वाले सूर्य, चन्द्रमा और उषा आदि के अधिष्ठात्री देवता माना जाते हैं। इस प्रकार से इन देवताओं के दो प्रकार के स्वरूप हो जाते हैं। एक स्वरूप अग्नि, जल, वायु आदि के रूप में जड़ पदार्थ के रूप में रहता है और दूसरा स्वरूप अधिष्ठात्री देवता के रूप में मनुष्यों की भांति प्राणधारी व चेतनायुक्त शरीर के रूप में रहता है। उपरोक्त भाष्यकारों के विचार से इन अधिष्ठात्री देवतों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों में इनसे सम्बन्धित मन्त्रों की आहुतियां दी जाती हैं। यह माना जाता है कि ये देवता अदृश्य रूप धारण करके यज्ञ में अपनी स्तुतियों को सुन कर ये प्रसन्न हो जाते हैं और यजमान की उस कामना जिसके लिए यज्ञ किया गया है, पूर्ण करते हैं। यह भी माना जाता था कि इन यज्ञ-याग करने वालों को मरणोपरान्त स्वर्ग में भी भेज देते थे। स्वर्ग में इन्हें देवताओं की भांति ही सुखभोग प्राप्त होते थे।

महर्षि दयानन्द के अनुसार यज्ञों का वास्तविक स्वरूप- महर्षि ने आर्योद्देश्य रत्नमाला में यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार की है-'जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वेमधपर्यन्त, वा जो शिल्पव्यवहार और पदार्थविज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।

महर्षि दयानन्द के अनुसार यज्ञों का वास्तविक स्वरूप- महर्षि ने आर्योद्देश्य रत्नमाला में यज्ञ की परभाषा इस प्रकार की है- 'जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वेमधपर्यन्त, वा जो शिल्पव्यवहार और पदार्थविज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसके यज्ञ कहते हैं।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित मान्यता-

(१) देवताओं को आहूत करने पर वे आकर हवि का भक्षण नहीं करते हैं- महर्षि दयानन्द को अधिष्ठात्री देवों की सत्ता स्वीकार्य न थी। उनके द्वारा तत्कालीन यज्ञ परम्परा का घोर विरोध किया गया। अपने वेदभाष्य व सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने देवतावाची पदों का सही अर्थ प्रस्तुत किया। सप्तम समुल्लास में देवता की परिभाषा देते हुए महर्षि कहते हैं- **'देवता'** दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहलाते हैं, जैसी कि पृथिवी। परन्तु इसको कहीं ईश्वर या उपासनीय नहीं माना है। महर्षि ने अपने वेदभाष्य में अग्नि, वायु आदि मन्त्रों के देवतावाची पदों का अर्थ स्वर्ग विशेष में रहने वाले ओर मनुष्य आकृति के किसी प्राणी के रूप में नहीं किया है अपितु प्रकरण के अनुसार मन्त्रों में प्रयुक्त विशेषण के आधार पर जगत् सृष्टा परमात्मा, राष्ट्र का शासक, राज्य कर्मचारी, अध्यापक, उपदेशक और जगत् प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले अग्नि, वायु, जल, आकाश आदि जड़ पदार्थों के रूप में किया है। चारों वेदों का अध्ययन करने पर कहीं पर भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि अग्नि, वायु, जल, आदि जड़ पदार्थों के मनुष्य जैसे शरीरधारी चेतन अधिष्ठात्री देवता भी पाये गये हों। इस प्रकार पारम्परिक रज्ञकर्त्ताओं की यह धारणा कि यज्ञों में मन्त्रों के द्वारा देवताओं को आहूत करने पर वे आकार हवि का भक्षण करते हैं और इस कृत्य से प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता का कल्याण करते हैं, वेद के प्रतिकूल है। महर्षि ने अपने वेदभाष्य से यह सिद्ध कर दिया कि वेद में वर्णित देवताओं का वह स्वरूप नहीं है जो मध्यकाल के विनियोगकारों और सायणाचार्य आदि भाष्यकारों ने वर्णित किया है।

(२) स्वर्ग के सम्बन्ध में महर्षि की अवधारणा- महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में स्वर्ग की परिभाषा देते हुए कहा है कि सुख विशेष स्वर्ग और दुःखविशेष भोग करना नरक कहलाता है। 'स्वः' सुख का नाम है। **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः' अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वही विशेष स्वर्ग कहलाता है। महर्षि के अनुसार आकाश के किसी स्थान विशेष में स्वर्गलोक नामक कोई स्थान नहीं है। वे किसी काल्पनिक स्वर्गलोक की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार सुख-समृद्धि से परिपूर्ण जीवन ही स्वर्ग का जीवन है। सायणादि आचार्यों और मध्ययुगीन याज्ञिकों का यह विचार था कि अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता वेदमन्त्रों के द्वारा आहूत किए जाने पर न केवल हवियों का भक्षण करते थे अपितु प्रसन्न होकर यजमान की कामनाओं को पूर्ण करते थे और उसके मरने के बाद उसे स्वर्गलोक में भेज देते थे। ऐसा कोई स्वर्गलोक आजतक किसी को दिखाई नहीं दिया है। इस प्रकार स्वर्गलोक और उसके विपरीत नरकलोक की कल्पना पूर्णतः असत्य व भ्रामक है, जिसका महर्षि ने कठोर शब्दों में निन्दा की है।

(३) यज्ञों का वास्तविक प्रयोजन- महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदविषयविचार नामक अध्याय के अन्तर्गत कहते हैं कि सुगन्ध आदियुक्त द्रव्य अग्नि डाला जाता है, उसके अणु अलग-अलग होके आकाश में रहते ही हैं, क्योंकि किसी द्रव्य का वस्तुता से अभाव नहीं होता। इससे वह द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों का निवारण करने वाला अवश्य होता है। फिर उससे वायु और वृष्टिजल की शुद्धि होने से जगत् का बड़ा उपकार और सुख अवश्य होता होता है। इस कारण से यज्ञ को करना चाहिए। पुनः इस शंका का निवारण करते हुए कि अतर और पुष्प आदि घरों में रखने से भी वायु और जल की शुद्धि की जा सकती है, महर्षि कहते हैं कि यह कार्य अन्य किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि अतर और पुष्पादि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिल के रहता है, उसको छेदन करके बाहर नहीं निकल

प्रथम स्वाधीनता संग्राम में
स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द का योगदान

-पं. नन्दलाल निर्भय

स्वामी दयानन्द ने १८५६ में हरिद्वार के नील पर्वत के चंडी मंदिर में डेरा डाला। वहां स्वामी रुद्रसेन ने उन्हें बताया कि भारत की जनता को जगाने के लिए आजादी के आंदोलन के नेता जल्दी ही चण्डी मंदिर आने वाले हैं। कुछ समय बाद तीन-चार अनजान लोग आए और उन्होंने पूछा कि स्वामी दयानन्द कौन है! एकांत में बैठकर स्वामी ने उनके साथ लंबे समय क्रान्ति पर चर्चा की। उन पांच लोगों के कहने पर स्वामी ने उनके साथ लंबे समय क्रान्ति पर चर्चा की। उन पांच लोगों कहने पर स्वामी जी ने साधु संगठनों को एकजुट करने का काम खुद अपने हाथ में लिया। उन्होंने स्वामी जी से कहा महाराज! पेशावर से कलकत्ता और दक्षिण में कर्नाटक तक हजारों भातीय तैयार हैं, पर साधु समाज का काम अभी पूरा नहीं हुआ। इन पांच लोगों के साथ दो और क्रान्तिकारियों ने स्वामी जी से संपर्क साधा। वे दोनों थे राजा गोविंद राय और रानी लक्ष्मीबाई। गोविंद राय उत्तर बंगाल के नादौर राज्य के मशहूर रानी भवानी वंश से जुड़े थे। चंडी मंदिर पर उन्होंने बताया कि किस तरह उनका राज्य हड़प लिया गया। उन्होंने स्वामी जी को १,१०१ रुपए समर्पित किए। स्वामी जी उनसे कहते हैं कि उन्हें धन की जरूरत नहीं है, पर राजा गोविन्द राय ने उनकी एक नहीं सुनी। इसी दौरान झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके तीन अन्य अधिकारी स्वामी जी से मिलते हैं। रानी ने आंखों में आंसू भर कर अपनी कहानी सुनाई। उन्होंने कहा-महाराज, में एक विधवा हूँ। अंग्रेजों ने ऐलान किया है कि वे आपकी इस हन का राज्य हड़प लेंगे। वे झांसी पर बड़ी सेना के साथ हमला करने की तैयारी में हैं। जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक मैं उन्हें अपना खानदानी राज्य हड़पने नहीं दूंगी, आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं एक योद्धा के रूप में लड़ते हुए अपना जीवन बलिदान कर सकूं। स बहादुर महिला के यह शब्द सुनकर स्वामी जी गद्गद् हो उठे। उन्होंने कहा-देवी! यह शरीर शाश्वत नहीं है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिनका शरीर किसी कर्तव्य के लिए बलिदान हो जाता है। वे अमर रहते हैं। अपनी तलवार उठाओ और इन विदेशियों से साहस क साथ लड़ो। स्वामी जी का कहना था-जनता का नेतृत्व करना और आग से खेलना ए जैसा ही खतरनाक है। छोटी सी गलती का मतलब है संपूर्ण विाश। सावधान रहिए और आजादी का संदेश पूरे भारत में गोपनीय तरीके से फैलाया जाना चाहिए।

११ अक्टूबर १८५५ को हरिद्वार की सभा में स्वामी विरजानन्द के भाषण दिया और मोहरसिंह को आजादी के योद्धा के रूप में आशीर्वाद दिया। सभा का आयोजन स्वामी पूर्णानन्द ने हरिद्वार की पहाड़ियों में किया था। इस सभा में ५६५ साधु शामिल हुए। इसमें १९५ मुस्लिम साधु और ३७० हिंदू साधु थे। इस सभा में नेत्रहीन संत स्वामी विरजानन्द के साथ उनके शिष्य स्वामी दयानन्द भी मौजूद थे। उनके अलावा हरियाणा सर्वखाप के मंत्री या प्रमुख मोहनलाल जाट सेना प्रमुख शिवराम जाट, उस सेना प्रमुख भागवत गूजर और पंडित शोभाराम भी उपस्थित थे। सर्वखाप के अधिकृत दस्तावेज लेखक और संदेशवाहक मीर मुश्ताक मिरासी भी वहां थे। हरियाणा सर्वखाप पंचायत पर हालांकि जाट समुदाय का आधिपत्य था, पर इसमें हरियाणा की सभी हिन्दू और मुसलमान जातियाँ भी भागीदार थीं। हरियाणा के पहलवान ब्रह्मदेव, जो जूनागढ़ अखाड़े के नागा योद्धा हो गए थे, त्यागियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जबकि पंडित शोभाराम बरेली से खान बहादुर खान के प्रतिनिधी के तौर पर आए थे।

सभा में फकरुद्दीन और स्वामी पूर्णानन्द ने अपने विचार व्यक्त किए। स्वामी पूर्णानन्द ने न सिर्फ धर्म के पालन पर जोर दिया, बल्कि राष्ट्र को ऊपर उठाने का भी आहवान किया। स्वामी विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द (पहले का नाम स्वामी चैतन्य) से कहा कि शास्त्र और अध्यात्म समझने से पहले वे अपना समय राष्ट्र को ऊपर उठाने में लगाएं। दरअसल स्वामी दयानन्द कुंभ मेले में स्वामी पूर्णानन्द से मिले थे और उनसे वेद-शास्त्र सिखाने का आग्रह किया था। इस पर पूर्णानन्द ने कहा था कि वे तो बुढ़े हो चले हैं, पर उनके शिष्य विरजानन्द उन्हें सिखाएंगे।

मोहरसिंह को साथ लेकर स्वामी दयानन्द तुरंत स्वामी पूर्णानन्द के आश्रम पर गए और वाँ एक गुप्त बैठक हुई। उसमें बिजरौल (मेरठ) के जाट दादा शाहमल (४२), ढकौली के चौधरी दयासिंह जाट, बहादुर शाह जफर के प्रतिनिधि, नाना साहेब, तात्या टोपे, राजा कुंवरसिंह, बेगम हजरत महल, रंगो बापूजी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई मौजूद थी। यहां मोहरसिंह का नाम शामली के जाट चौधरी के रूप में दर्ज है। यह बात रोचक है क्योंकि मोहरसिंह शामली गए थे, जहां उनकी मुलाकात देवबंद के मोहम्मद कासिम ननौतवी और सहारनपुर के वलीउल्लाह संप्रदाय के अन्य विद्वानों से हुई थी।

१८५६ में हुई एक अन्य बैठक का जिक्र यहां महत्वपूर्ण है। मथुरा में हुई इस बैठक में स्वाधीनता संग्राम के सारे बड़े नेता मौजूद थे। इसका नेतृत्व स्वामी विरजानन्द कर रहे थे और इसकी कार्यवाही मीर मुश्ताक मीरासी दर्ज कर रहे थे। मिरासी का वर्णन बेहद रोचक है-१८५६ सन् यानी संवत १९१३ मथुरा में एक पंचायत हुई। इस बैठक में हिन्दू, मुसलमान और अन्य समुदाय के लोगों ने हिस्सा लिया। पंचायत मे नेत्रहीन साधु विरजानन्द को पालकी में लाया गया। जब वे पहुँचे तो वही मौजूद सभी लोगों ने उन्हे सम्मान दिया। जब मंच पर बैठे तो सभी हिन्दू और मुसलमान फकीरों ने आदर देने के

क्रमशः पृ.१५ पर

कर्मकाण्डियों द्वारा यह माना जाता था कि घोड़ा पुनर्जीवित होकर स्वर्ग चला जाता है। महर्षि दयानन्द अश्वमेध के इस रूप से सहमत नहीं थे और न इसे वेद व शतपथ ब्राह्मण के अनुकूल समझते थे। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में राजप्रजाधर्म में लिखा है कि **'राष्ट्रपालनमेव क्षत्रियाणाम् अश्वमेधाख्यो यज्ञो भवति, नाश्वं हत्वातदङ्गानां होमकरणं चेति'** अर्थात् राष्ट्र का पालन करना ही क्षत्रियों का अश्वमेध यज्ञ है, घोड़े को मारकर उसके अंगों को होम करना नहीं। यजुर्वेद के ३० व ३१वें अध्याय में भी पुरुषमेध यज्ञपरक वर्णन मिलते हैं। किसी समय इस यज्ञ में पुरुषों को यूपों में बांध कर बलि देने की प्रथा थी। महर्षि दयानन्ब ने ३०वें अध्याय में आये पदों का उचित अर्थ करते हुए बताया कि इसमें राजा के कर्तव्य बताते हुए कहा गया है कि अमुक-अमुक गुणों वो पुरुष या स्त्री को आप राष्ट्र में उत्पन्न कीजिए या नियुक्त कीजिए और अमुक-अमुक दुष्ट आचरण करने वाले पुरुष या स्त्री को आप दूर कर दीजिए। इसी प्रकार कर्मकाण्डानुसार यजुर्वेद के ३५वें अध्याय में इन महीधर आदि भाष्कारों ने पशु-बलि परक अर्थ किए हैं। यजुर्वे का मन्त्र ३५.२० प्रस्तुत है-

वह वपां जातवेदः पितृभ्यों यत्रैनान् वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुलया उप तान्स्त्रवन्तु सत्या एषामाशिषः संनमन्तां स्वाहा॥

महीधर ने इस मन्त्र का विनियोग चर्वी (वपा) का होम करना माना है। वे कहते हैं कि इस मन्त्र से गाय की चर्वी का होम करें। वह मन्त्र का अर्थ करते हुए कहते हैं- 'हे जातवेदः अग्ने ! तू पितरों के लिए गाय की चर्वी को वहन कर ले जा, जहाँ कि दूर पर निहित उन्हें तू जानता है। चर्वी की नहरें पितरों के पास पहुंचे। दाताओं के मनोरथ भी पूर्ण हों। स्वाहा, सुहुत हो।' इस मन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि ने6वपा' का अर्थ चर्वी न मानते हुए भूमि किया है। उनके अनुसार यह शब्द 'वप' धातु से बना है। जिसमें बीज बोया जाए, वह वपा कहलाती है। इसी प्रकार 'मेदसः कुल्याः'का अर्थ भी चर्वी की नहरें नहीं है अपितु 'स्निग्ध नहरें' हैं। महर्षि अर्थ करते हैं- 'ज्ञानी जनों को चाहिए कि वे जनक व विद्याशिक्षा देने वाले श्रेष्ठ पितृजनों से खेती-योग्य भूमि को प्राप्त करें। उसकी सिंचाई आदि के लिए उन्हें जलप्रवाह से युक्त नदी व नहरें निकट प्राप्त हों, जिससे सत्य द्वारा उनकी यथार्थ इच्छाएं फलीभूत हों।

(६) यज्ञ का व्यापक अर्थ- यज्ञ शब्द 'यज्' धतु से निष्पन्न होता है और उसके देवपूजा संगतीकरण और दान ये तीन अर्थ होते हैं, जो इस शब्द में अन्तर्निहित हैं। तीनों शब्द बहुत अधिक व्यापक अर्थों और भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। महर्षि ने अपने समस्त ग्रन्थों और वेदभाष्य में इन शब्दों में अन्तर्निहित व्यापक अर्थों और भावों को यज्ञ नहीं माना है अपितु कहा कि मनुष्यों को चाहिए कि संसार के उपकार के लिए जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र यज्ञ का आचरण करते हैं, वैसे अनुष्ठान करें। (यजु. १७.५५) महर्षि ने यज्ञ का पठन-पाठनरूप भी हमारे समक्ष रखा है। वे कहते हैं कि जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठनरूप यज्ञकर्म करने वाला मनुष्य है, वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा सन्तोष करने वाला होता है, इसलिए ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है। (यजु. ७.२७)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पौराणिक कर्मकाण्डियों द्वारा स्थापित भ्रामक विचारधाराओं का न केवल खण्डन किया अपितु वेद के पदों का निरूक्तानुसार यौगिक इर्थ करते हुए सटीक अर्थ प्रस्तुत करते हुए, धरती से बाहर किसी स्वर्ग नाम के लोक की प्रचलित कल्पना का विरोध किया। मनुष्याकृति वाले देवताओं का यज्ञों में आकर हवि का भक्षण करने सम्बन्धी विचार उन्हें मान्य न था। अधिष्ठात्री देवताओं की सत्ता को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। यज्ञों द्वारा यज्ञ की एक सीमित परिभाषा होम के रूप में की जाती थी। महर्षि ने यज्ञ का वास्तविक प्रयोजन बताते हुए, एक व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है। उपरोक्त समस्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि याज्ञिक विचारधारा को महर्षि ने एक अप्रतिम योगदान दिया है।

शेष पृ.१२ से....

लिए उनका पैर चूमा। नाना साहेब पेशवा, मौलवी अजीमुल्लाह खान, रंगो बापू और बादशाह बहादुर शाह जफर के बेटे ने उन्हें सम्मान के साथ अशर्फियां भेंट कीं।

इसके बाद स्वामी विराजानन्द ने अपनी बात शुरू करते हुए पहले ईश्वर की वंदना की। फिर उन्होंने कहा-स्वाधीनता ही संपत्ति है और गुलामी छल है, एक धोखा है। देश पर स्थानीय लोगों का शासन विदेशी लोगों के शासन से सैकड़ो गुना ज्यादा बेहतर है। दूसरों की गुलामी अपमान और शर्म का कारण होती है। ये क्रूर लोग हमारी जनता पर जबरदस्ती शासन र रहे हैं। वे हमारे राजाओं का अपमान करते हैं। ये क्रूर लोग हमारी जनता पर जबरदस्ती शासन कर रहे हैं। वे हमारे राजाओं का अपमान करते हैं। हमारे लोगों से जानवरों जैसा व्यवहार करते हैं। ईश्वर की नजर में सभी लोग बराबर हैं, पर ये क्रूर विदेशी उन्हें बराबर नहीं मानते। विदेशियों में कुछ अच्छाइयाँ जरूर हैं पर सच्चाई यह है कि मामले के भीतर झांकिए तो उनका सुर बदला मिलता है। वे हमारी नेक सलाह और कुदरत की अच्छाइयों को खारिज कर देते हैं। इसीलिए हम इस धरती के लोगों से अपील करते हैं कि यह हर नागरिक का कर्तव्य है कि वह देशभक्त बने और एक दूसरे को भाई मानें। जो कोई हिन्दुस्तान में रहता है वह एक दूसरे का भाई है और बहादुर शाह जफर हमारे शासक हैं।

विरजानन्द का यह भाषण १८५७ के दबे पक्ष को प्रकाशित करता है। इससे यह पता चलता है कि सनातन धर्म के दर्शन ने भारत में बहादुर शाह जफर को दैवीय समर्थन दिया था और किस तरह से सनातन धर्म और इस्लाम के बीच ऐतिहासिक गठजोड़ कायम किया था। अंग्रेजों और बम्बई व कलकत्ता में बैठे उनके चंद बुद्धिजीवियों को यह अहसास नही था कि भारत पर मुगलों का शासन सनातन धर्म के समर्थन से चल रहा था। पहाड़ों में रहने वाले ऋषियों और मुनियों की औरंगजेब सहित सभी मुगल दरबारों में पहुँच थी। मुगल दरबार में यह मान्यता थी कि जब तक पहाड़ों में रहने वाले ऋषि-मुनि तपस्या करते रहेंगे, भारत और मुगल वंश सुरक्षित है।

सकता और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हलकापन नहीं होता है । उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नही सकता क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता है । फिर सुगन्ध और दुर्गन्ध वायु के वहीं रहने से रोगनाशादि फल भी नहीं होते हैं । महर्षि ने वेद मन्त्रों का भाष्य करते समय कई स्थलों पर यज्ञ करने के प्रयोजन का उल्लेख किया है । कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं-

१. पर्यावरण की शुद्धि-

(१) विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थना सहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिए कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु, सभ्य मनुष्य, चाही हुई वर्षा, मीठे फलों से युक्त अन्न और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है, यह जानना चाहिए । (यजु. भा. २२.२५)

(२) जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें, वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करने हारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है, यह जानना चाहिए । (यजु. भा. २२.२५)

(२) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषय विचार अध्याय में महर्षि ने वर्णित किया है कि यज्ञ में जो भाफ उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है, इससे वह यज्ञ परोपकार के लिए ही होता है । महर्षि ने इस सम्बन्ध में कहा है-ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि (यज्ञोपि त.) अर्थात् जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है, उसी के सुख के लिए यज्ञ होता है अविद्वान मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा । इसलिए अर्थवाद यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत् में आनन्द को बढ़ाता है । परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार ओर होम करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य होनी चाहिए । सो इसी प्रकार के र्य करने से सबको उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञकर्ता को, अन्था नहीं ।

२. अन्तःकरण की शुद्धि और सुख-

(१) जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिए यज्ञक्रियाओं को करते हैं, वे सुखी होते हैं । (यजु. २२.२०)

(४) यज्ञों में विनियोग- महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के तक और माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद संहिता के सम्पूर्ण मन्त्रों का भाष्य किया । उससे पूर्व उवट, महीधर और सायण इसका भाष्य कर चुके थे । उवट और महीधर के भाष्य मुख्य रूप से कात्यायन-श्रौतसूत्र में विनियोजित कर्मकाण्ड का अनुसरण करते हैं और सायण के भाष्य भी इस प्रकार से कर्मकाण्डीय परम्परा का अनुसरण करते हैं । महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत है कि पूर्वकृत विनियोग कोई अटल रेखा नहीं कि उसका अनुसरण करना अनिवार्य हो । सभी आचार्यों ने एक मन्त्र का विनियोग एक प्रकार से ही नहीं किया है । उन्होंने एक मन्त्र का अन्य प्रकार से भी विनियोग किया है । इससे यह प्रतीत होता है कि मन्त्र का पूर्वकृत विनियोगों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पूर्वकृत विनियोगों के सम्बन्ध में कहा है कि जो युक्तिसिद्ध एवं वेदादि प्रमाणों के अनुकू हो तथा जो मन्त्रार्थ के अनुसार हो, वह विनियोग ग्राह्य हो सकता है । महर्षि ने स्वयं को पूर्वकृत विनियोगों के बन्धन में नहीं बांधा और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ही कहा कि वेद केवल कर्मकाण्ठ नहीं है, ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड और विज्ञानकाण्ड परक अर्थ भी किए जाने चाहिए । उनके भाष्य से वेद में अग्नि, वायु आदि वेदवर्णित देवताओं से अनेक देवों की पूजा की भ्रान्ति नहीं होती है । अन्य भाष्यकारों ने अग्नि, वायु आदि से परमेश्वर से भिन्न अभिमानी देवों का ग्रहण किया है, वहीं महर्षि ने उन्हें, एक परमेश्वर का गुणवाची माना है ।

(५) यज्ञों में पशुवध का निरोध- कर्मकाण्ड के अनुसार यजुर्वेद के प्रथम अध्याय से द्वितीय अध्याय के अठाईसवें मन्त्र तक दर्शपूर्णमास यज्ञ है । महीधर की कर्मकाण्डपरक व्याख्या में पष्ठ अध्याय के मन्त्र ७ से २२ तक अग्नीषोमीय पशु का प्रयोग आता है । इसमें छाग (बकरे) को देवताओं के लिए काटा जाता है । मन्त्र ७ से १९ तक पशु को मारने आदि की विधि का वर्णन किया गया है । मन्त्र २० के अनुसार अधवर्यु मृत पशु के सब अंगो को स्पर्श करके कहता है कि इस पशु के अंग-अंग में प्राण निहित किया और पशु को कहता है कि तुम जीवित होकर देवताओं के समीप जाो । उसके बाद प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् पहले से ही पृथक् रखे हु पशु के पिछले हिस्से को ग्यारह भागों में बांट कर, ''समुद्रं गच्छ स्वाहा' आदि ग्यारह मंत्राशों से आहुति देते हैं । (मन्त्र २१) । अन्त में सब यजमान और ऋत्विज् वरूण से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें भय से मुक्त करें । (मन्त्र २२) महर्षि दयानन्द ने उक्त मन्त्र का अर्थ करते हु कहा हैं कि यह उस अवसर का है जब बालक के माता-पिता विद्याध्ययानार्थ उसे गुरुकुल में प्रविष्ट कराने लाये हैं आचार्य अपने इस नवागत शिष्य को सम्बोधित करके कहता है- हे शिष्य ! मैं समस्त ऐश्वरयुक्त, वेदविद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए इस जगत् में सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से वा पृथिवी के हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से प्रीति करते हुए तुझको जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल औ औषधि हैं, उन जल और गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से नियुक्त करता हूँ । तुझे मेरे समीप रहने के लिए तेरी जननी अनुमोदित करे, सहोदर भाई अनुमोदित करे, मित्र अनुमोदित करे और तेरे सहवासी अनुमोदित करें । अग्नि और सोम के तेज ओर शांतिगुणों में प्रीति करते हुए तुझको उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य के नियम-पालन के लिए अभिषिक्त करता हूँ । बकरे के यज्ञ में बलि करने के सम्बन्ध में माता-पिता, भाई और मित्र अनुमोदित करें, यह सन्दर्भ के प्रतिकूल है और इससे सिद्ध होता है कि इस प्रसंग में यह अर्थ पूर्णतः वास्तविक अर्थ से भिन्न व प्रतिकूल है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि वेद में बलात पशु बलि सम्बन्धी प्रसंग डालने का प्रयास किया गया है । इसी प्रकार के प्रसंग अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में यजुर्वेद के २२वें से २५वें अध्याय में, पुरुषमेध यज्ञ के सम्बन्ध में पशुबलि परक अर्थ किए गए हैं । इसमें घोड़े की बलि तथा महिषी के साथ मृत घोड़े के सोने के अश्लीलता भरे प्रसंग हैं ।

సత్యము యొక్క మహాత్యము

సత్యానికి సమానమైన తపస్సు మరొకటి లేదు. అపుణ్యానికి సమానమైన పాపము మరొకటి లేదు. మానవ జీవితములో సత్యానికి చాలా మహత్యము కలదు. అందుకే క్రాంతదర్శి దేవ దయానందుడు ఆర్య సమాజము యొక్క మొదట ఐదు నియమాలో సత్యము యొక్క మహత్తును పరిపాలిస్తూ సత్య శబ్దాన్ని ప్రయోగించాడు. సత్యమును గ్రహించుటకు అసత్యమును త్యజించుటకు ఎల్లప్పుడు సిద్ధముగా నుండవలెనని నాల్గవ నియమములో స్పష్టంగా నిర్దేశించాడు. మహర్షి దయానందుడు సత్యాన్ని పరిభాషిస్తూ ఈ విధముగా చెప్పెను, "ఏదైనా పదార్థము ఎలా ఉన్నదో, దానిని అలాగే చెప్పడము, అలాగే వ్రాయడము మరియు అలాగే నమ్మడము సత్యమన బడును". దేవ దయానందుడు వ్యవహారభాను గ్రంథములో మానవ జీవనములో సత్యము యొక్క మహత్తును స్థాపిస్తూ ఇలా వ్రాసెను "సమస్త మానవులు ఎల్లప్పుడు అసత్యమును విడిచి సత్యముతోనే సమస్త వ్యవహారములు చేయవలెను దీనితో ధర్మార్థ కామమోక్షములను పొంది ఎల్లప్పుడు ఆనందముగా ఉండవలెనని."

మహాభారతములో సత్యము యొక్క మహిమను ఇలా వర్ణించెను-"సత్యం స్వర్గస్య సోపానమ్". అనగా స్వర్గానికి మెట్లు సత్యమేనని. మనుష్యుని సమస్త కోరికలు సత్యము వలననే సిద్ధించును. సత్యమార్గము ఎంత కష్టదాయకమైనా కూడా సత్యమార్గములో నడిచిన వ్యక్తి తన జీవిత లక్ష్యాన్ని తప్పకుండా పొందుతాడు. సత్యముతోనే ధర్మార్థకామమోక్షాలు లభిస్తాయి అందువలన మానవుడు ఎంతటి విపరీత పరిస్థితులేర్పడినా కూడా సత్యమును ఎప్పుడూ విడువకూడదు. మనుష్యుని ఆంతరిక అంధకార రూప అవిద్యను నష్టముచేసే ఒక దివ్య దీపము సత్యము.

ఏ మానవుడైతే ఎల్లప్పుడు సత్యాన్ని పలుకుతాడో జనులంతా అతని మాటలనే ఎల్లప్పుడు విశ్వసిస్తారు. జనులు సత్యవాదితో నిఃశంకులై నిశ్చింతులై వ్యవహరిస్తారు ఎందుకనగా మమ్మల్ని సత్యవాది వ్యక్తి మోసగించడని వారికి తెలుసు. ఎల్లప్పుడు సత్యవాది నిర్భీకుడై మరియు చింతాముక్తుడై ఆనందముగా జీవిస్తాడు అతను ఎవరితో ఎప్పుడూ భయపడడు. సత్యవాది మనుష్యునికి తన ప్రతి కార్యములో పరివారము నుండి సమాజము నుండి మద్దతు లభించడము చేత తన ఉత్సాహము పెరుగుతుంది. అందుకు అతను సదా ప్రసన్నముగా ఉంటాడు. సత్యమును పలికే వారికి సమాజములో ప్రతిష్ఠ పెరుగుతుంది మరియు సంపూర్ణ సత్యవంతుల యషస్సు యుగయుగాల వరకు స్థిరముగా ఉండును. సత్యవదులు ఎవరితోనైనా మాట్లాడడానికి ఎప్పుడూ భయపడరు వారికి మానసిక ఒత్తిడి లేకుండా ఉంటాడు. అతనికి మంచి నిశ్చింత నిద్ర పట్టును. శరీరము యొక్క సమస్త అంగ ప్రత్యంగములు ఆరోగ్యముగా నుండును. సత్యవాది ఎల్లప్పుడు ప్రసన్నుడై, రోగముక్తుడై మరియు నిశ్చింతుడై ఉంటాడు.

సత్యము యొక్క మహత్తును స్థాపిస్తూనే వేద భగవానుడు మనుష్యమాత్రులను ఆదేశించాడు "వాచః సత్యమశీయ". అనగా నేను నావాణిలో సత్యాన్ని పొందుదును గాక. ఆ తరువాత సత్యముతో మాధుర్యాన్ని ధరించవలెనని నిర్దేశిస్తూ ఇలా అనెను.

సత్యం బ్రూయాత్ ప్రియం బ్రూయాత్ న బ్రూయాత్ సత్యమప్రియం. (మనస్మృతి) అనగా సత్యమును మాట్లాడండి, ప్రేమయుక్తమైన భాషలో మాట్లాడండి, సత్యమును కటు భాషలో మాట్లాడకండి అని. ఎందుకనగా మానవుని శరీరము ఆత్మకు మందిరము సర్వాంతర్యామి పరమాత్మ యొక్క నివాస స్థానము అందువలన ఎల్లప్పుడు సత్యాచరణచే శుద్ధముగా ఉంచవలెను మరియు అసత్యముతో ఎప్పుడు కూడా దీనిని అపవిత్రము చేయకుము. సరలతను రథమువలె మరియు సత్యమును శస్త్రమువలె చేసుకొని జీవన సంగ్రామములో సాగిపోవలెను ఎందుకనగా "సత్యమేవ జయతే నానృతమ్" ఎల్లప్పుడు సత్యానికే విజయము కలుగును అసత్యానికి కాదు. అందువలన మానవునికి శ్రేయస్కరము ఇదే ఏమిటంటే అతడు జీవితములో సత్యవ్రతమును ఎల్లప్పుడు ధరించవలెను.

जन्म जाति का रोग मिटाओ

आर्यावर्त्त में बढ़ गया, जन्म-जाति का रोग ।
नर-नारी इस रोग के, भोग रहे हैं भोगा ।।

भोग रहे हैं भोग, गया है बढ़ आड़म्बर ।
घूम रहे हैं धूर्त, कुचाली लोग धरा पर ।।

पौंगा-पंथी छुआ-छूत को बढ़ा रहे हैं ।
उल्टी पट्टी आज, विश्व को पढ़ा रहे हैं ।।

हुए स्वार्थ में लिप्त, धर्म क है बिसराया ।
भ्रष्टाचारी बढ़े, पाप को यहां बढ़ाया ।।

जन्म-जाति का रोग, रोज बढ़ रहा संवाया ।
प्रेमभाव मिट गया, ईर्ष्या-द्वेष बढ़ाया ।।

कहते चारों वेद, कर्म प्रधान जगत में ।
शुभकर्मों से मिले, सभी को मान जगत में ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं वरण साथियों ।
चुनना वरण का अर्थ, करो सब मनन साथियों ।।

कर्मों के अनुसार, वरण माने जाते हैं ।
शुभ कर्मों से बड़े, सभी जाने जाते हैं ।।

गाय, भैंस, बकरी, चिड़िया, तोता अरु घोड़ा ।
सभी जातियां अलग, ज्ञान कर लो तुम थोड़ा ।।

मानव योनि है कर्मयोनि, शुभ कर्म कमाओं ।
भोग योनियां शेष, स्वयं समझो सुख पाओ ।।

करने अच्छे काम, हमें भेजा ईश्वर ने ।
भूल प्रभु को गए, लगे मनमानी करने ।।

दुखियों, दीन, अनाथों को, निश दिन ठुकराते ।
चोरी करते रोज, नहाने गंगा जाते ।।

न्यायकारी भगवान, दयालु, सुख का दाता ।
देख रहा है, सर्व विश्व को, जग निर्माता ।।

ईश्वर है सर्वज्ञ, अजर, सर्वान्तर्यामी ।
फल देता है यथायोग्य, न्यायकारी नामी ।।

ध्यान लगा कर सुनो, भलाई इसमें जानो ।
वैदिक पथ पर चलो, धर्म अपना पहचानो ।।

मानव तन अनमोल, सार्थक इसे बनाओ ।
'नन्दलाल' शुभ कर्म करो, कर्त्तव्य निभाओ ।।

तब, अब और आगे

-श्री बा. मदनमोहनजी सेठ

आर्य समाज का उद्देश्य गुरु की आज्ञा और ऋषि दयानंद द्वारा दी गई 'गुरुदक्षिणा' में छिपा है । संसार के संपूर्ण इतिहास के पृष्ठ उलट जाइये, विरजानंद से गुरु और दयानन्द से शिष्य कितने मिलेंगे ? विरजानन्द की पाठशाला में अनेक शिष्य पढ़ते थे, उनमें अनेक विद्वान् भी थे, किन्तु उन्होंने दयानन्द से ही 'जीवन दक्षिणा' क्यो चाही ? दयानन्द की यथार्थ वैदिक पाखण्ड सिंधु दुराचार, अनाचार, अत्याचारादि न जाने कितने दैत्य दानवों का सामना करना पड़ा । शरीरधारी दैत्यों के मानसिक दैत्य कहीं प्रवलतर होते हैं धार्मिक क्षेत्र में भी हजरत ईसा को इतनी कठिनाइयों से पाला पड़ा, न श्रीमान् मूसा को। मुहम्मद साहव अलस्सलाम को तो सिर्फ बुतपरस्तों के साथ जहाद उठानी थी । महात्मा बुद्ध को पशु बलि रुकवाने का मुख्य काम था । और शंकर को केवल बौद्धमत का मूलोच्छेदन मात्र । हमारे लंगोटवन्द को तो क्या किरानी, क्या कुरानी और क्या पुरानी सभी को युद्ध-स्थल में आह्वान देना पड़ा । सचतो यह है सारी खुदाई इक तरफ, वैदिक सचाई दूसरी तरफ सभी को परास्त किया । पश्चिमी प्रवाह को कान पकड़कर पूर्वाभिमुख करदिया । कभी मैदान न छोड़ा । कोई प्रलोभन प्रलोभित न कर सका । निर्भय था, निश्शंक था । शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति का जीता जागता नमूना ऐसा दूसरा इस युग में नहीं प्रकट हुआ । जो कहा सो करके दिखाया । कर दिखाने का समय है । उसके मार्गपर चलो, अवश्य कल्याण होगा ।

सत्यज्ञान प्राप्ति की इच्छा को पूर्णकर सत्य सनातन वैदिक धर्मप्रचार की अग्नि को अधिकाधिक क्यों प्रज्वलित किया ? गुरु ने शिष्य को पहिचाना और उनके जीवन को स्थिर कर दिया ।

गुरुदक्षिणा की यह माँग-'भारत के अन्धकारको दूर कर सत्य सनातन वैदिक संस्कृति की रक्षा करो-अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन कर आर्ष ग्रन्थों को महिमा स्थापित करो, आज भी आर्य समाज को अपने उद्देश्यपूर्ति के लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है । दक्षिणा रूपी बलिवेदी पर ऋषि ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया ।

गुरुदक्षिणा की यह माँग-'भारत के अन्धकारको दूर कर सत्य सनातन वैदिक संस्कृति की रक्षा करो-अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन कर आर्ष ग्रन्थों को महिमा स्थापित करो, आज भी आर्य समाज को अपने उद्देश्यपूर्ति के लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है । दक्षिणा रूपी बलिवेदी पर ऋषि ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया ।

ऋषि की अमृतत्व प्राप्त करने की अभिलाषा ज्ञानाग्नि, शिवलिङ्ग पर चूहे के चढ़ने से प्रबुद्ध हुई । प्रकाश की वह क्षीण रेखा-पिता के तिग्स्कार, शुद्ध चैतन्य रूप में घूमना, संन्यास ग्रहण, योग-विद्या के रहस्य भेद के लिये यौवन काल में ही शीत, क्षुधा पिपासा, जंगल के भय आदि क्लेशों को कुछ न गिनकर उत्तराखण्ड भ्रमण, नदीतट के भीषण पार्वत्य देशों में विचरणा, मठाधीशों का प्रलोभन, अलखनन्दा तट पर हिमावर्त्त पर्वतीय प्रदेशों का अतिक्रमण आदि दुःखों से, गल में बढ़ती हुई बनाग्नि की तरह अधिक से अधिक प्रज्वति और शक्तिशाली होती गई । उनके गुरु के संसर्ग से अग्नि शुद्ध होकर स्वच्छ प्रकाश देने लगी-अन्धकार दूर होने लगा, प्रचलित अवैदिक मतमतान्तरों का प्रभाव कम होने लगा-सत्य सनातन वैदिक धर्म का स्वरूप प्रकाशित हुआ ।

वर्तमान

गुरु की उसी आज्ञापूर्ति का उत्तरदायित्व पूर्ण भार ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज के कन्धों पर डाला । आर्य समाज का प्रारम्भकाल स्वर्ण युग का समय था । प्रत्येक आर्य पुरुष 'सत्य' के आधार पर युगविधाता गुरु का सच्चा शिष्य होने के प्रयत्न में ही अपने जीवन की असार्थकता समझता था । उस समय के आर्य पुरुषों ने क्या क्या कष्ट नहीं सहे ? आर्य समाजों का बराबर प्रेम व्यवहार क्या भूलने योग्य है ? आज भी उस समय की दिव्य मूर्तियों के दर्शन प्रायः हो जाते हैं ।

आर्य समाज ने शित्रा, वैदिक प्रचार, कुरीति निवारण आदि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की । उसने सैकड़ों शिक्षणालय, गुरुकुल, अनाथालय तथा अनेक परोपकारी संस्थायें स्थापित कीं । उस समय के उपदेशकों ने निःस्वार्थ भाव से, श्रद्धा से ओत-प्रोत होकर वेद प्रचार में अपने सम्पूर्ण जीवनों को लगा दिया । आर्य नेताओं और उपदेशकों ने जिस अपने आदर्श जीवन की आहुतियां दी हैं उनके प्रकाश से समाज आलोकित हो उठा है ।

आर्य समाज के कार्य तथा उसके संस्था संगठन और अनुशासन की धाक चारों ओर जम गई । आर्य समाज को भारतीय विकास-युग में एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ, परन्तु अब अवस्था बदल रही है । सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है । प्रत्येक शक्ति अपने हाथ में रखना चाहता है । स्थान स्थान पर झगड़े नज़र आते हैं । मुकद्दमेवाजी तक नौबत पहुँचने लगी-अपनी अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है । संस्थायें जो उद्देश्यपूर्ति के लिये उत्तम साधन थीं स्वयं उद्देश्य बन रही हैं, संगठन शक्ति का ह्रास हो रहा है, केन्द्रित शक्ति बिखर रही है-न भ्रातृभाव है और न अनुशासन । पहला प्रेम कहाँ है ? उदेशकों में वह त्याग और तपस्या-वह आग-नहीं जो दूसरों को प्रजवलित कर सके । नेताओं में वह धार्मिक आकर्षण नहीं जो दूसरों को अपनी ओर खींच सकें । आर्य समाज के मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार की दशा भी छिपी हुई नहीं है, उत्तम वैदिक साहित्य भी हमारे पास नहीं है, फिर प्रचार कैसे हो ?

क्या यह समय आत्म चिन्तन का नहीं है ? हमारी क्या अवस्था है ? हमें सोचना चाहिये कि कहीं हमारा

भविष्य

अन्धकारपूर्ण तो नहीं है । काम बहुत कुछ करने को है । दो सभ्यताओं के इस संघर्ष में वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द के शिष्यों के लिये सुस्ताने का समय कहाँ है ? यह समझना भूल है कि आर्य समाज का कार्य समाप्त हो गया । पश्चिमीय सभ्यता के अव्यवस्थित आचार विचार भारत की प्राचीन सभ्यता को-भारतीय समाज को उलट-पुलट कर रहे हैं । अदिखारवाद और भोगवाद के चकाचौंध ने नवयुवकों की बुद्धि फेर दी है-समाज की नस नस में विष व्याप्त होता जाता है ।

ऐसे विकट समय में कर्तव्य को भूलकर कहीं पथभ्रष्ट तो नहीं हो रहे-यह बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार करने को बात है ।

ऋषि दयानन्द का उद्देश्य तो पूरा होगा ही लेकिन देखना यह है कि ऋषि तथा उसके अनुयायी होने का दावा करने वाला आर्य समाज आर्य वैदिक संस्कृति की रक्षा में तथा आर्य ग्रन्थों की महिमा स्थापित करने में कितना सहायक होता है?

प्रत्येक्र आर्य पुरुप को ऋषि के इस पवित्र जीवन आहुतिपर्व पर अपने हृदय में विवेचन करना चाहिये कि हम कहाँ पर हैं ? विरासत में, सत्य सनातन वैदिक धर्म का जो प्रकाश हमने प्राप्त किया है उससे दूसरों को हम कितना प्रकाशित कर रहे हैं ?

सामूहिक श्रावणी उपाकर्म पर्व एवं हैदराबाद आर्य सत्याग्रह बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रम के दृश्य

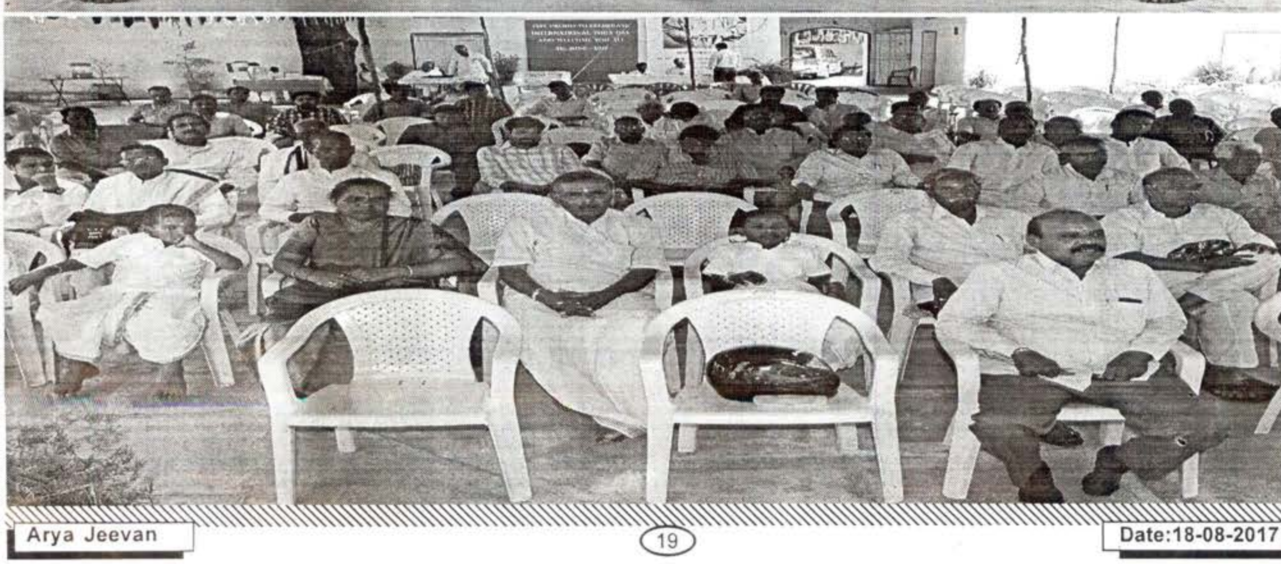

जड़चर्ला निवासी वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं सुप्रसिद्ध आर्य समाजी श्रीमान् के.वी. रेड्डी जी (यज्ञ प्रकाश) को ९०वें जन्म दिवस पर सभा की ओर से बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएं

जीवेम् शरदः शतम्ः

सभा की ओर से सभा प्रधान ठा. लक्ष्मण सिंह जी, श्री के.वी. रेड्डी जी का सम्मान करते हुए। साथ में सभा के अन्य पदाधिकारिगण

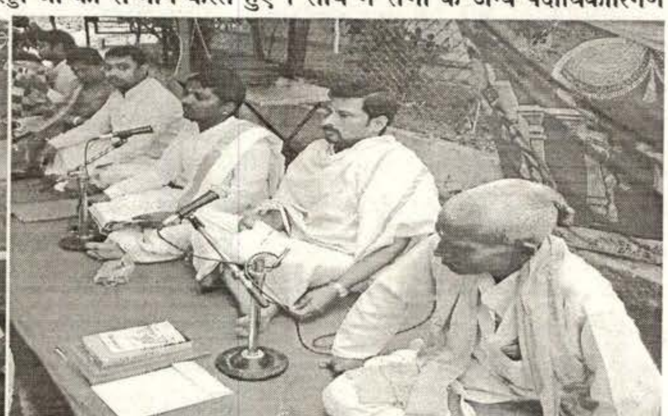

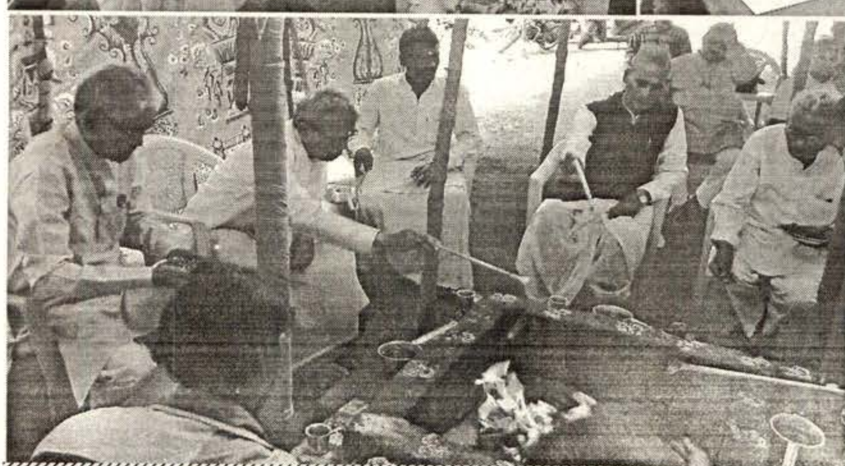

आर्य समाज चेंगीचर्ला के श्रावणी पर्व में उपस्थित आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.तेलंगाना के प्रधान ठा. लक्ष्मण सिंह जी एवं पदाधिकारिगण